सरकार तुम्हारी आँखों में

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक
पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
[बुधुआ की बेटी, घंटा, चंद हसीनों के खुतूत, पंजाब की महारानी, रेशमी, व्यक्तिगत आदि पुस्तकों के रचयिता]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

तृतीयावृत्ति] सं० २०११ वि० [मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. भारती (भाषा)-भवन, ३८१०, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा बाजार, लखनऊ
४. वेस्टर्न बुकडिपो, रेजिडेंसी रोड, नागपुर १

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

कहावत है—नाई की बारात में जने-जने ठाकुर। और यह कहावत हिंदी के नामधारी लेखकों पर ख़ूब ही चस्पाँ है।

ऐसे लोग तो हैं असल में कोई हज्जाम—मगर वक़्त की ख़ूबी से 'ठाकुर' बने-तने हैं। रोज़ ही सरस्वती के आँगन में मोहमयी प्रमाद-मदिरा से पागल अनाप-शनाप बकते सुने जाते हैं ये!

अन-जीवत-सम-चौदह-प्राणियों के ये सरदार स्वयं तो प्राण-हीन हैं। एक पन्ना भी ज़ोरदार या मौलिक या सरस नहीं लिख सकते। जो लिखते भी हैं, वह महज़ पेटार्थ। जो सोचते हैं, वह केवल स्वार्थ। मगर वल्लाह! ज़रा इन बेशर्मों की बातें तो सुनिए!

ये पैग़ंबरी और साधुत्व और दार्शनिकता और कलाकारिता का दावा करते हैं। जिमि, टिट्टिभ पग सूत उताना!

और अपने से कहीं श्रेष्ठ कलाकारों को निर्जीव या मुर्दा या समाप्त कहते न तो ये थकते हैं, न लज्जित होते। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि पार्टीबंदी के कारण ज़िम्मेदार लोग भी इनका भंडा फोड़ने से हिचकते हैं! सारे साहित्य में—योरपियन राजनीति की तरह—एक तहलका मचा हुआ है। जो जिस कोने में है, वह—'टेढ़ेखाँ' की तरह—वहीं से सर हिला रहा है कि यदि संसार में कोई है, तो—'सोहं!'

फलतः कई बरसों से हिंदी में 'तू मरा''''मी तुरा' या 'अहो रूपमहोध्वनि !' ही सुनाई पड़ रही है। किसी भी क्षेत्र में—दुनिया में मुह दिखाने लायक कुछ काम नहीं हो रहा है। चारों ओर—ज़रा आँखें खोल देखिए—निविड़ांधकार है। मंडूक, गीदड़, चमगीदड़ और उल्लू बोल रहे हैं—कहाँ?—वहाँ, जहाँ मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपाली हिंदी की भारती मराली मुक्तों में बैठकर नीर-क्षीर-विवेक किया करती थी !

आज यह अंधकार मुझे निहायत आशामय मालूम पड़ता है, इसलिये कि अपना दीपक मंद, गुण क्षुद्र और स्नेह स्वल्प है, मगर है अपना दीपक !

श्रीअनंत चतुर्दशी
कलकत्ता, १९३७ ई०

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

उस्तादजी

"दाने-दाने पर मुहर लगी है नादान !"

"सही है उस्ताद, मगर रईस या राजा तो बग़ैर ख़ुशामद ख़ुश नहीं होता। बनिया भी दादा कहने से गुड़ देता है।"

"अफ़सोस है बेटा ! बेशक दुनिया ऐसी ही चिकनी-चुपड़ी-पसंद है। फिर भी महज़ चापलूसी से ख़ुश होनेवाला रईस न तो गुनी होता है, और न गुनवंतों का वाजिब आदर-सत्कार ही कर सकता है।

"लेकिन अपने सरकार तो ख़ुशामद-पसंद नहीं हैं। हाँ, कुछ सरदार और बेईमान हुज़रे ऐसे हैं, जिनकी सोहबत में महाराज भी मामूली आदमी बन जाते हैं।"

"मगर अपने से तो बीस बरस तक धरमपुर-राज्य का नमक खाने पर भी साहब या मुसाहब किसी की ख़ुशामद न हो सकी।"

"इसीलिये तो उस्ताद ! जब देश के सारे कलावंत जुड़ गए, तब हुजूर की बारी आई, और पुकार हुई है। सो भी ऐसी रवारवी में कि बहुत मुमकिन है, मजलिस के वक़्त तक हम दरबार में हाज़िर न हो सकें, और ऊपरी अहलकारों की तेज़ बातें सुननी पड़ें।"

"बातें तो चाकरी की वजह से सुनना ही पड़ती हैं। कहावत है—'चाकर है, तो नाचा कर; ना नाचै, तो ना चाकर।' मगर बेटे, अब जल्दी कर। एक अच्छा-सा ताँगा ला। भागते जइयो, पैसों का मुँह न देखियो।"

"बहुत खूब।"

"मगर सुन तो, शायद मेरी सुरमेदानी खाली हो गई है। देख ले बेटे! हाँ, उसी संदूक़ची में है। अह रहीम! अंदर जाकर अपनी ख़ाला से दरियाफ़्त तो कर, साफ़ा कोई साफ़ है?"

"बहुत अच्छा जनाब।"

तेज़ी से रहीम ने संदूकची खोल सुरमेदानी की जाँच की।

"अभी तो बहुत सुरमा इसमें है उस्ताद!"

"ला, मुझे दे। आइना भी। भागता हुआ जा बेटे! देख, तेज़ ताँगा लइयो, देर न करियो। सात बजे से जलसा शुरू होनेवाला है। ज़रा सुन तो, मेरी घड़ी में कितने बजे? मगर नहीं, तू ताँगा लाने जा, फ़ीरोज़ी से घड़ी मँगाए लेता हूँ। जा, भागता जा। फ़ीरोज़ी! ओ बेटी!"

"आई, अब्बाजी!"

अंदर मकान से बाँसुरी की सुरीली आवाज़ आई, साथ ही भागती हुई फ़ीरोज़ी भी बाहर आई।

"इजाज़त!"

"धरमपुर जाना है, ज़रा अपनी अम्मा से पूछ, दरबार

लायक़ कोई साफ़ा बकस में है ? और सुन, मेरी घड़ी भी लेती अइयो !"

फ़ीरोज़ी झपाके से अंदर गई। इधर उस्तादजी निहायत सावधानी से आइने के सामने आँखों में सुरमा सजाने लगे। फिर चूड़ीदार पायजामा, फिर चिकन का बूटेदार कुरता और किनख़ाब के अचकन से वह लैस हुए। तब तक फ़ीरोज़ी भी घड़ी और जोधपुरी पगड़ी लिए आ गईं।

"रख, रख दे बेटी। अब जाकर अपनी अम्मा से पूछ शीशी में 'दवा' है या नहीं ?"

'दवा' उस्तादजी दारू को कहा करते थे। फ़ीरोज़ी पुनः मकान में चली गई। अब उस्तादजी पगड़ी सँवारने लगे—बाँकी, पेचदार ! अच्छी तरह सज और आइने में बार-बार अपनी छवि निहारकर उस्तादजी ने अब बीन पर नजर डाली। उसको खोलकर बाहर किया, और झाड़-पोंछकर, मशरिक़ की ओर मुँह कर उन्होंने उस साज़ को माथे से लगाया · न-जाने क्या मंत्र-सा कुछ बुदबुदाने लगे—और फिर कई बोसे उस्ताद ने बीन के लिए।

"उस्ताद !" रहीम भागता आया—"ताँगे तो सभी धरमपुर चले गए।"

"तब तो मार डाला। एक भी...?"

"एक ताँगा मिला है, मगर निहायत ख़राब। सारे रास्ते वह चर्रख़चूँ चिल्लाएगा—बेसुरा, और उसका मरियल टट्टू—

क़सम ख़ुदा की उस्ताद !—कम-से-कम साढ़े तीन दिन में ढाई कोस चलेगा।"

"भुस ग़नीमतस्त....शुक्र....है, कुछ तो लाया।"

फ़ीरोज़ी आई—'दवा' की शीशी (ठर्रे की बड़ी बोतल) दोनो हाथ में सँभाले।

"और गिलास ?"—उजलत में उस्ताद ने फ़ीरोज़ी से पूछा—"भूल गई ? जब करेगी, आधा काम। ख़ुदा तुझे ग़ारत न करे ? इसे कब शऊर होगा। ला।"

मुँह से बोतल लगा, बिना चखने, सोडा या पानी के आधी बोतल लहरीली आग उस्तादजी ने अपने पेट में फैला दी। फिर (बीड़ी सुलगाकर) मुँह से भकाभक धुआँ बाहर फेकने लगे। और, अब धर्मपुर जाने के लिये यह उनका 'अंजन' तैयार हो गया।

"चल बेटा !"—उस्ताद ने रहीम को ललकारा—"साज़ को ताँगे में रख दे। तू भी चलेगा न ?"

"जैसा हुक्म हो।"

"चल तू भी। मौक़े-बे-मौक़े वहाँ दवा वग़ैरा घटे-बढ़े, तो तेरी ज़रूरत पड़ेगी।"

क्षण-भर बाद क़स्बा रसूलपुर से मरियल घोड़ेवाले एक टुटहे ताँगे पर दो जन धर्मपुर की ओर लुढ़कते नज़र आए। उनमें एक था शागिर्द रहीम, और दूसरे थे मशहूर वीणाकार और गुणी गायक उस्ताद गुलाबख़ाँ 'रसूलपुरी'।

आठो गाँठ कुम्मैत

कुछ ही दूर जाने पर उस्ताद गुलाबखाँ मन-ही-मन सोचने लगे कि ऐसी ही सवारी के बारे में कहा गया है—"घोड़े की सवारी चलता जनाजा।" उस्तादजी को भरोसा हो गया कि इस सवारी से दरबार तक पहुँचना नामुमकिन है। फिर भी बेचारे पशु की उभरी हुई हड्डियाँ और ऊभड़-खाभड़ सड़क की कठोरता का मन-ही-मन अनुभव करते हुए उन्होंने ताँगावाले को तेज जाने को न कहा, बल्कि जब जब ताँगेवाला घोड़े की पीठ पर चाबुकें सटकारता, तब-तब दर्दीले उस्ताद का दिल दुखने-सा लगता।

"जब तेज चलनेवाला जानवर ही नहीं है, तब इसको मारने से फ़ायदा? ए भाई ताँगावाले! चलने दे ग़रीब को, मार मत।"

और धीरे-धीरे ताँगा बढ़ने लगा। तेज हवा (शराब) में उस्ताद की बातें भी तेजी से बढ़ने लगीं—"सरकारी हरकारा क्या कहता था? कहाँ-कहाँ के कलावंत......"

"कहता था उस्ताद कि इंदौर के अमीरखाँ साहब आए हैं—बड़े ठाट-बाट से। यह अमीरखाँ कौन हैं उस्ताद?"

"वही तो, जिनका रंग पारसाल मैंने जमने नहीं दिया था

बनारस में। मगर एक बात है—अमीरखाँ के खानदान में 'भैरवी' रागिनी एक ज़माने से अनोखे रंग में गाई जाती है। उनके परदादा ज़हीनखाँ ने शाहंशाह बहादुरशाह के दरबार में एक बार ऐसी सच्ची भैरवी गाई थी कि मिस्ले तस्वीर रागिनी सामने खिंच आई थी—उतर। अमीरखाँ में मगर कोई खुसूसियत नहीं। 'फिरत' की तान में हमेशा वह बेसुरा हो जाता है। ख़ैर, और कौन आया है?"

"टिक्! टिक्!" ताँगेवाले ने घोड़े को तेज़ चलाने की पुनः कोशिश की—नए सिरे से उसने चाबुक को उसकी पीठ पर सड़काना शुरू किया। उस्ताद गुलाबखाँ घबरा उठे—'ए भाई, ताँगावाले! मैं कहता हूँ, चलने दे ग़रीब को अपनी चाल से। 'चला-चली की राह में भला-भली कर ले'—केवल मार खाने से घोड़े तेज़ नहीं होते, कुछ दाना-घास भी देता है?"

'खाँ साहब की बातें!" ताँगेवाला बोला—"यह साला जाँगर चोर है—हराम खोर! इसको खिलाने की फ़िक्र में मैं खुद भूखा सो रहता हूँ, मगर इसको तकलीफ़ नहीं देता। आठ आने की घास, पंद्रह सेर चना, घी, गुड़ क्या क्या मैं नहीं खिलाता, इस पाजी को—मगर काम के वक्त हमेशा अड़ेगा। टिक्! टिक्! चल बे?"

एक हंटर गहरा बैठा घोड़े की पीठ पर, और उस्तादजी तड़प उठे—"हाँ रहीम, बनारस से कौन आया है?"

"कोई 'ठुमरी' गानेवाला कत्थक..........क्या नाम—गोपालदास शायद... . ..."

"अभी लौंडा है गोपाल!" मूछों पर ताव देते हुए गर्वीले गुलाबखाँ ने कहा—"बनारसी ठुमरी के मशहूर उस्ताद मौजुद्दीनखाँ के शागिर्दों में सबसे नालायक़ वही है। क्या कोई गवैया शाजहाँपुर से भी आया है?"

"शाहजहाँपुर से गवैया तो नहीं उस्ताद! हरकारा कहता था "

"सप्! सप्!" अड़ते घोड़े की पीठ पर कई हंटर बरसे। इस बार उछलकर गुलाबखाँ ताँगे से नीचे आ रहे, और बेतरह बिगड़े ताँगेवाले पर—"बिल्ली के गले में मोहनमाला—बार-बार समझाने पर भी मानता नहीं। क़साई, तूने समझ क्या रक्खा है हमें! ग़रीब जानवर को मार-मारकर बेजान किए डालता है बदमाश! जा, अब हम पैदल जायँगे। उठा ले बेटा रहीम, बीन को काँधे पर उठा ले। बाज़ आए हम इस हत्याकांड से।"

"माफ़ करो उस्ताद!" ताँगेवाले ने ख़ुशामद की, दाँत दिखाए—"इसकी सुस्ती से जब नाकों दम आ जाता है, तभी मारता हूँ। ख़ैर, हुज़ूर को नागवार है, तो नहीं मारूँगा, तशरीफ़ रखिए।"

"हाँ, लखनऊ से कौन आया है?" ताँगा के चलते ही उस्ताद की बातों का सिलसिला भी आगे चला।

"हरकारा कहता था लखनऊ से तवायफें ज्यादा आई हैं।"

"कौन-कौन? मुश्तरी आई है? वह मेरी शागिर्द है—बेटे! आज से दस साल पहले, जब मैं उसको तालीम दिया करता था, उन दिनों वह ऐसी हसीन थी कि अल्ला-अल्ला! मैं तो बरसों दीवाना रहा उस पर। है आई वह?"

"मुश्तरी का नाम तो उसने नहीं लिया। हाँ गंगा नाम की किसी हिंदू तवायफ़ का नाम वह ले रहा था।"

"गंगा—आई है? सच कहना बेटे! आह! उसकी मा से मेरा 'वास्ता' था। गंगा को भी मैंने—तब वह महज़ आठ बरस की थी—कई महीने तालीम दी है। खूब गाती है छोकरी। और...."

"सप्! सप्!" लाचार फिर मारा ताँगेवाले ने अड़ियल बुड्ढे टट्टू को।

इस बार उस्ताद को ऐसा गुस्सा आया ताँगेवाले पर कि अगर होती, तो उस वक्त वह बंदूक़ दाग देते। बड़ी-बड़ी लाल आँखों से तरेरकर ताका उन्होंने उसकी तरफ़। मगर अब ताँगेवाला भी खीज उठा था, घोड़े के व्यवहार से—'जनाब, बार-बार आँखों से गोलाबारी न कीजिए मुझ पर। टट्टू मेरा है। ठीक से न चलेगा, तो जरूर मारूँगा—चल, चल, नहीं तो आज तुझे मारकर जमींदोज़ कर दूँगा!"

"सप् ! सप् ! सप् !" ताँगेवाला .ग़ुस्से से काँपकर घोड़े को मारने लगा, लेकिन दुर्बलता या स्वभाव के कारण घोड़े पर मार का असर कुछ भी न पड़ा। वह अपनी ही चाल चलता रहा। सुख-दुख, निंदा-स्तुति भूलकर—तपस्वियों-सा, ममस्वी।

मगर उस्ताद ग़ुलाबख़ाँ ताँगेवाले की गुस्ताख़ी पर मन-ही-मन निहायत नाराज़ हुए। उसी चाबुक से वह उसे पीटना चाहते थे। ख़ैरियत हुई, धर्मपुर का राजद्वार दिखाई पड़ने लगा। अल्ला-अल्ला करके ताँगा शहर में दाख़िल हुआ।

और, अब रहीम से बातें करना भूल बैठे-ही-बैठे उस्ताद ग़ुलाबख़ाँ बाज़ार में कोई चीज़ टटोलने लगे—एक हलवाई की दूकान पर उन्होंने ताँगे को ठहराया—

"बस कर !"—उस्ताद ने गुस्ताख़ ताँगेवाले को डाँटा—"क्या भाड़ा है तेरा ? क्या है रहीम ?"

"पाँच रुपए उस्ताद।"

"बहुत ख़ूब........ए हलवाई ! पाँच रुपए के अच्छे पेड़े तो देना। देखो, तुम्हें गंगा की क़सम है, कम न देना।"

"पेड़े इतने क्या होंगे उस्ताद ?"—कुछ समझता-सा ताँगे-वाले ने पूछा।

"घोड़े को खिलाऊँगा—जिसकी पीठ पर मुसीबत की तरह चढ़कर मैं यहाँ तक आया हूँ।"

"और मेरा भाड़ा ?"

'भाड़ में गया —बदमाश !" बिगड़े उस्ताद ताँगेवाले पर—"मेरे हज़ार मना करने पर भी तू बार-बार क्यों मारता रहा जानवर को ? पशु ! मैं तेरी नहीं, इसकी पीठ पर रसूलपुर से धरमपुर तक आया हूँ। मज़दूरी—इंसाफ़न् तेरी नहीं, इसकी है। हाँ भाई हलवाई, पाँच के हैं ? कितने ? साढ़े तीन सेर—ठीक ? यह लो पाँच।"

उस्ताद ने डलिया-भर ताज़े केसरिया पेड़े हाथ में लेकर अपने हाथ से घोड़े को खिलाना शुरू किया—उसी मरियल टट्टू को, जो अपने सारे लंबे रास्ते में चाबुकें खाता रहा।

"देखो उस्ताद !"—अब ताँगावाला बिगड़ा—"मैं तो अपने पाँच रुपए आपसे वसूल करूँगा। खिलाइए घोड़े को पेड़े भले। मैं बीन आपकी छीन लूँगा।"

तब तक तो शोर मच गया। रियासत की पुलिस भी घटना-स्थल पर आ गई। अपने गुणों से उस्ताद गुलाबख़ाँ सारे राज्य में मशहूर थे। पुलीसवालों ने उनको तो सलाम करना शुरू किया, और ताँगेवाले की मरम्मत होने लगी।"

चाबुक मारनेवाला डंडे खाने लगा। और, लापरवाही से चाबुक खानेवाला आराम से पेड़े खाने लगा।

ताँत

हमारा खयाल है कि हमारे धार्मिक देश में धर्मपुर नाम की कोई रियासत आज भी जरूर होगी, मगर हमारी कहानी का धर्मपुर कोई दूसरा ही है। जिस तरह 'आदमी-आदमी अंतर, कोई हीरा, कोई कंकर' होता है, वैसे ही हमारी कहानी का धर्मपुर दूसरों से साफ़ जुदा है।

हमारे धर्मपुर के श्रीमान् का नाम है—महाराज मदनसिंहजू देव। काफ़ी बड़ी रियासत है, जिसकी सालाना आमदनी लाखों नहीं करोड़ों की है। महाराज के अधीन बीस लाख, ग्यारह हज़ार, नव सौ निन्यानबे लोग बसते हैं।

सिपाही-युद्ध के ज़माने तक धर्मपुर-राज्य की अपनी खास सेना भी थी, और उस सेना ने सन् ५७ में विदेशियों के विरुद्ध जैसा लोहा लिया था, वह रियासत के इतिहास में रक्ताक्षरों या स्वर्णाक्षरों में लिखा है।

अनेक अँगरेज़ इतिहासकारों का मत है कि धर्मपुर के राजा हमेशा ही सनकी हुआ करते हैं। यद्यपि सनकी या मनस्वी होना इस देश क्या, सारे संसार के नरेशों के लिये कोई अन-होनी बात नहीं। कहावतें हैं—शाह और जिन एक; राजा का परचाना और साँप का खेलाना बराबर है। युवती, शास्त्र

नृपति वश नाहीं। उक्त कहावतों का अर्थ यही तो है कि राजा झक्की होता है।

फिर भी महाराज मदनसिंहजी के प्रपिता राजा शत्रुघ्न-सिंह की सनक के बारे में किसी इतिहास-लेखक ने अपनी पुस्तक में एक विचित्र कहानी लिखी है। लिखा है—

"महाराज शत्रुघ्नसिंह भारी सनकी थे। पढ़े-लिखे तो ख़ाक पत्थर थे, मगर वह दिमाग़ के बड़े तेज़ थे। रियासत का सारा काम क़ानून और व्यवस्था से नहीं, उनकी झकों से होता था। महाराज कुश्ती, शिकार, कविता और संगीत के बड़े रसिक थे। केसरिया रंग देखकर वह फड़क उठते थे, मगर काले रंग से सख़्त नफ़रत थी उन्हें। उन्हीं के वक़्त से आज तक धर्मपुर राज्य में काला रंग घातक माना जाता है, और बारह वर्ष विलायतों की ख़ाक छानने पर भी धर्मपुर का मौजूदा राजा काले रंग से वैसे ही भड़कता है, जैसे लाल कपड़े से साँड़। जो हो।

"महाराज शत्रुघ्नसिंह नित्य सवेरे उषाकाल से पूर्व ही उठकर राजमहल के पूर्वीय भाग के एक छज्जे पर बैठा करते थे। उस छज्जे से धर्मपुर-नगर की सभी सड़कें और गलियाँ बख़ूबी नज़र आती थीं।

"और, एक दिन महाराज सवेरे बैठे ही थे कि आवाज़ सुनाई पड़ी—'तेल लो! तेल ताजे तिल का!'

"'हैं!'—महाराज झिझके—'सबेरे-सबेरे तेली की आवाज़! पहरे पर कौन है?'

"'आज्ञा धर्मावतार!' ड्योढ़ीदारों के सरदार ने महाराज को नमस्कार किया।

"'यह तेली!—उठ-भोर मेरे महल के नीचे शोर मचा रहा है! मोरी की ईंट चौबारे चढ़ी! पकड़ लाओ बदमाश को!'

महाराज के सामने आते ही और उनका रुद्र रूप देखते ही तेली की दुम से तेल निकल गया—ग़रीब के होश के फ़ाख़्ते उड़ गए।

"मगर महराज शत्रुघ्नसिंह पर उस तेली का कुछ और ही प्रभाव पड़ा। सर खुजलाकर, कुछ सोचकर महाराज ने बार-बार नीचे से ऊपर तक उसको ध्यान से देखा—'क्यों रे तेली!'

"'दोहाई अन्नदाता की! माफ़ कीजिए सरकार! तेली हूँ, तो क्या हुआ, उदार राजा की सड़कें सबके लिये हैं। गढ़े कुंभार, भरे संसार। मुझे सरकार मालूम नहीं था कि दीनानाथ इतने तड़के उठ जाते हैं। क्या करूँ, पेट के लिये सो-उठते ही तेल बेचने लगता हूँ।'

"'पहले यह बतला!'—सहज, तीव्र स्वर से महाराज बोले, मगर तेली पुनः काँप उठा—'पहले यह बतला, तू मुझे पहचानता है?'

"'क्यों नहीं मालिक, कौन सेवक अपने अन्नदाता और

स्वामी को न पहचानेगा। हुज़ूर मेरे मा-बाप हैं, देवता और परमेश्वर हैं।'

"'अरे मूर्ख!'—मुस्कराए महाराज—'चापलूसी क्यों करता है, क्या मैं तुझको खाए जाता हूँ? देख, सच-सच बतला; कभी तू मुझसे कुश्ती लड़ा था? क्या है तेरा नाम? जग्गू तेली न।'

"'हाँ-हाँ मालिक, जग्गू। मैं ग़रीब हूँ, ग़रीब के तीन नाम—झूठा, पाजी, बेईमान। सरकार से कुश्ती लड़ने की तक़दीर मेरी कहाँ? हाँ, जब धर्मावतार छोटे थे, तब राज्य के अखाड़े में मैं भी ज़ोर किया करता था।'

"'ज़ोर ही नहीं, एक दिन तू मुझसे लड़ा भी था। ए! कौन है पहरे पर? इस तेली को पाँच हज़ार रुपए अभी दिलाओ।'

"'नहीं हो सरकार।'—तेली जग्गू गिड़गिड़ाया—'इस मुँह के लिये मसूर की दाल नहीं। इतने रुपए पाने से मेरी लुगैया राँड़ का दिमाग़ उड़न-खटोले पर उड़ने लगेगा। गंजी कबूतरी के लिये महल न बनवाओ सरकार! नहीं तो तेलिन मेरी कमज़ोर मुट्ठी के बाहर हो जायगी। फिर न तो वह हुक़्क़ा ताज़ा करेगी, और न कोल्हू के बैल को पानी पिलाएगी। दोहाई ग़रीब-परवर की! मुझको ग़रीब ही रहने दीजिए।'

"'अरे जग्गू!'—ताज्जुब से महाराज बोले—'तेरी रानी भी हैं? तब भला पाँच हज़ार से क्या होगा? अरे कौन है?

इस तेली को पचास हज़ार रुपया अभी दो! यह मेरा बाल-सखा है।'

'"दोहाई, दोहाई धर्मावतार की! अमीर मुझे न बनाइए, नहीं तो मेरी ज़िंदगी की राह में काँटे बिछ जायँगे। तेलिन बेकही हो जायगी। बच्चे अपना पैतृक व्यापार भूल जायँगे। कुल-धर्म से गिरने से मेरा नाश हो जायगा सरकरा! रहम कीजिए—मैं ग़रीब ही अच्छा हूँ।'

'"अरे कौन है पहरे पर?'—पुनः तेज़ आवाज़ दी महाराज ने—'जग्गू तेली मेरा बचपन का दोस्त—हा-हा-हा-हा—भारी शैतान है। पहले बोला अकेले है, फिर फुसफुसाया तेलिन रानी भी है, और अब कहता है तेलचट्टे—इसके बच्चे—भी हैं। पचास हज़ार में यह क्या खाएगा, क्या अपनी रानी को सँवारेगा, और क्या खर्चेगा बच्चों की ब्याह-बेरखी में। इसको पाँच लाख रुपए—हे कौन है!—मेरे दोस्त जग्गूराम को अभी पाँच लाख रुपए दो।'"

और, वह तेली उसी वक़्त लाखोंपती बना दिया गया। और उसी दिन से उठ-भोर 'तेल लो!' की आवाज़ लगाना उसने बंद कर दिया।

अँगरेज़ इतिहासज्ञ के कथनानुसार धर्मपुर के वर्तमान महाराज के परदादा श्रीमान् शत्रुघ्नसिंहजू देव ऐसे झक्की या उदार या विचित्र महापुरुष थे।

राग

राजा शत्रुघ्नसिंह जैसे बेपढ़े-लिखे थे, वैसे मदनसिंहजी नहीं हैं। इनकी शिक्षा तो अच्छे-अच्छे विदेशी विद्वानों द्वारा और विलायतों में हुई है। फिर भी मदनसिंहजी कम झक्की नहीं हैं, ऐसा उनके स्वभाव के विशेषज्ञों का मत है। जिस बात या वस्तु का शौक़ आपको पैदा हो जाता है, उसकी हद ही नहीं, एक सरहद तक आप घसीट ले जाते हैं।

एक बार महल बनाने की धुन समाई, तो आधे दर्जन तैयार कराए। एक को इटैलियन इंजीनियर ने सँवारा, दूसरे को फ्रेंच और तीसरे को जर्मन ने। पर्शिया और भारत के वास्तु कलाविशारदों ने भी महाराज के लिये पूर्वीय किते के तीन महल तैयार किए।

कुत्तों का शौक़ कभी पैदा हुआ, तो सारे संसार से अजीबो-ग़रीब कुत्ते धर्मपुर में ख़रीद मँगाए गए। उनकी रखवाली के लिये सैकड़ों नौकर और सबके ऊपर एक अँगरेज़ डॉक्टर रक्खा गया; जिसका नाम पड़ा—"कुत्ता डॉक्टर!"

महाराज के रंग-महल में जिस तरह हजारों रानियाँ हैं, वैसे ही महाराज के 'कुत्ता भवन' में हजारों कुत्ते भी हैं। रंग-रंग और देश देश की रानियाँ—रंग-रंग और देश-देश के कुत्ते!

धर्मपुराधीश को संगीत का शौक़ भी जबरदस्त है। उनके जन्म-दिवस पर हर साल ऐसा जलसा और दरबार होता है। धर्मपुर में कलावंतों और गुणियों का ऐसा जमावड़ा, दसों लाख रुपए रियासत के सर्फ़ होते हैं जिस पर! इस देश के हरएक शहर के एक-एक अच्छे कलाकार और क़साबियों को महाराज निमंत्रित करते हैं। गायिकाएँ भी गाहियों आती हैं। पूरे हफ़्ते तक धर्मपुर नगर इंद्र का अखाड़ा बना रहता है।

और महाराज के संगीत-प्रेम ही से सैकड़ों गवैए, साज़िंदे और कलावंत धर्मपुर में बस गए हैं।

कलावंतों या गुणियों को जिस खुले दिल से महाराज मदन-सिंह पुरस्कृत करते हैं, उसकी एक कहानी 'लंडन टाइम्स' की किसी पुरानी संख्या में हमने इस तरह पढ़ी है—

"....कलाकारों को जो पुरस्कार धर्मपुर-राज्य में दिया जाता है, वह निश्चय ही शाही है। उस दिन....महाराज की वर्षगाँठ की ख़ुशी में हम अनेक विदेशी और ब्रिटिश रेज़ीडेंट भी राजा के मेहमान थे। देश के कोने-कोने से आई हुई हजारों गायिकाओं में से चुनकर एक सौ आठ हमारे सामने पेश की गईं। पूर्वीय पोशाकों में परियों-सी सजी।

"जलसा शुरू हुआ। एक सौ आठ परियाँ नाचने-गाने के लिये उत्सुक हमारे सामने चंद्राकार खड़ी हो गईं। दूसरे विविध बाजों का 'आर्केस्ट्रा' बजने लगा। वे एक धुन में, एक

ही गान को गाने लगीं। गीत था—'गरे बैयाँ न डारो, मेरा जिया घबराय।'

"'इस छोटी-सी 'लाइन को' एक सौ आठ गायिकाएँ भिन्न-भिन्न हाव-भाव और स्वर में व्यक्त करने लगीं। साज़ों के तार-तार हज़ार-हज़ार झंकार लेकर उनके स्वर-वैभव का चारों कोने विस्तार करने लगे। और, उनमें एक गायिका निहायत सुंदरी थी। उसका गला कोयल-सा था। उसने जब भाव बतलाकर 'गरे बैयाँ न डारो, मेरा जिया घबराय' गाया—महाराज ख़ुश हो गए।

"और ख़ुश होने पर महाराज ने न तो वाह-वाह किया, न खिलखिलाकर हँसे, न तालियाँ ही बजाईं। उन्होंने अपने छोटे वज़ीर की तरफ़ संकेत-भरी आँखों से देखा, और क्षण-भर बाद सुंदरी गायिका ने देखा—चाँदी की तश्तरी में एक हज़ार रुपए!

"और विलायत के व्यवसायी इस बात का विश्वास न करेंगे, मगर यह सच है कि महाराज मदनसिंह ने उस सुंदरी गायिका की गाने की अदा को साठ बार सराहा, और साठ बार छोटा वज़ीर चाँदी की तश्तरी में हज़ार-हज़ार रुपए सुंदरी के सामने सजाता रहा। साठ हज़ार रुपए एक रात में! गायिका तो धन के मद से पागल, बेहोश हो जाती, अगर महाराज ने उसको एक बार भी और पुरस्कृत किया होता, तो ज़रूर वह मारे ख़ुशी के मूर्च्छित हो जाती।

"इस मनस्तत्त्व का महाराज ने भी अनुभव किया, और चतुराई से उन्होंने गायिका को समझाया—तू क्यों काँप रही है? ये महज़ तेरे लिये नहीं, सभी के वास्ते हैं।

"मगर हमें मालूम है, दूसरे दिन साठ हज़ार रुपए उसी सुंदरी गायिका के डेरे पर पहुँचा दिए गए। उन एक सौ सात दूसरियों को भी इनाम दिया सरकार ने। मगर एक-एक हज़ार कलदार। इस तरह भारतवर्ष के एक राजा ने अपनी जन्म-गाँठ की ख़ुशी में, एक रात में, एक मद में, दो लाख रुपए उड़ा दिए!

"और, इतना सुनने पर भी जो परदेशी यह अंदाज़ न लगाए कि हिंदुस्थान में दूध और मधु की नदियाँ बहा करती हैं, और चाँदी-सोने के मेह बरसा करते हैं, तो बेशक वह ज़रूरत से ज़्यादा भोला होगा।"

दरबार में

बाहर और धर्मपुर के सभी गायकों के जुट जाने पर भी उस्ताद गुलाबख़ाँ अभी नहीं आए। इस बात को ताज्जुब या हैरानी से महसूस किया महाराज के उस छोटे वजीर ने, जो ऐसे जलसों का प्रबंध सँभाला करता था।

यह तो कुशल हुई कि उस्ताद के बारे में महाराज ने दरियाफ़्त नहीं किया, नहीं तो कलाकार से ज्यादा दुर्दशा होती इंतज़ामकार याने उस वज़ीर की।

दरबार निहायत कारीगरी से सँवारा गया था। पैंसठ खंभों के एक विस्तृत भवन में ख़ुद महाराज का आसन ऐसी जगह पर था, जहाँ से दरबार का एक-एक व्यक्ति दिखाई पड़ता था।

माननीय सरदारगण महाराज के दाहने बैठे थे, और राज्य के धनिक-वणिक बाएँ। देव-विमोहिनी सुंदरियाँ श्रीमान् के ठीक सामने थीं, और गायिकाओं के पीछे साजिंदे तथा अमीर-उमरावों के पीछे कामिल उस्ताद गवैए और तंतुकार बैठे थे।

हरएक खंभे से ख़ुशबूदार फूलों के हार और गुलदस्ते झूल रहे थे। स्थान-स्थान पर सोने-चाँदी और गंगा-

जमुनी के इत्रदान—पेरिस, बेलजियम और कटक के बने इत्रदान—सुगंध से भरे धरे थे।

दरबार के एक-एक व्यक्ति के गले में ताज़े सुगंधित पुष्पों का गजरा खिलखिला रहा था। और, सारा समाज मखमली तथा ऊनी क़ालीनों पर सजा था। ऐसे क़ालीन, जिनकी मुलायमियत के आगे 'स्प्रिंगदार' विलायती गद्दे झख मारें। ऊँचा आसन केवल महाराज मदनसिंहजी का था। वह बालिश्त-बराबर ऊँची गंगा-जमुनी चौकी पर बीरासन विराजमान थे।

महाराज ने संकेत किया वज़ीर को कि जलसा शुरू हो। वज़ीर ने लाहौर के एक बूढ़े गवैया को सामने हाज़िर हो मुजरा करने का इशारा किया। वह गायक उठता ही था कि सबकी नज़र दरबार में लड़खड़ाते आते हुए राज्य के उस्ताद गुलाबख़ाँ पर पड़ी। उस्ताद को देखकर महाराज के कपोलों पर भी हलकी हँसी थिरक उठी।

एक बार चारों तरफ नज़र दौड़ाकर उस्ताद ने देखा, आज उनकी जगह पर (हरएक गुणी की ख़ास जगह थी दरबार में) धर्मपुर का एक दूसरा गायक बैठा है। उस्ताद को उसका यह व्यवहार निहायत धृष्ट मालूम पड़ा। उसके पास जा धीरे से उन्होंने कहा—"हटिए यहाँ से—ख़ुशका गधे के लिये नहीं होता।"

"क्या ?"—दूसरे गायक ने भी उस्ताद के बोलने के ढंग

का विरोध किया—"कहाँ के तानसेन बारहाँ हैं आप, मैं नहीं हटूँगा। आपसे मैं किसी बात—किसी गुन में कम नहीं। आप बजानेवाले, मैं गवैया। पेशवा मैं हूँ।"

"क्या है शोरोगुल ?"—महाराज ने दरियाफ्त किया।

"गंजी कबूतरी, महल में डेरा! यह मुन्नूखाँ धाँधली मचाए हैं ग़रीबपरवर !"—गुलाबख़ाँ ने राजा को अभिवादन कर निवेदन किया—"मेरी जगह पर इसने ज़बरन् क़ब्ज़ा कर लिया है।"

"ज़बरन् नहीं हुज़ूर, अहमक से पड़ी बात काढ़ो गैंटा, तोड़ो दाँत।"—मुन्नूख़ाँ ने भी बा मुहावरे जवाब दिया। आज तक यह ग़लती होती थी; जो दरबार में बजानेवाले आगे और गवैये पीछे बैठाए जाते थे। उत्तम गाना बजाना मध्यम—इस कहावत को कौन नहीं जानता दीनानाथ! सदा से साजिंदे सुरीलों के पीछे बैठते हैं।"

"बिलकुल ग़लत धर्मावतार !"—गुलाबख़ाँ भी गरजे—"राग-ताल का हाल न जाने, दोनो हाथ मजीरा। गवैया जब कभी गाने बैठता है, तंबूरा उसके आगे रहता है। पहले तार झंकृत होता है, फिर कहीं गले की हवा खुलती है।"

"ठीक है !"—उद्धत होने पर भी महाराज गुलाबख़ाँ की इज्जत करते थे—"ठीक है उस्ताद, उत्तम बजाना और मध्यम गाना है। हे! यह पागल गवैया मेरे उस्ताद की

जगह पर कहाँ से आ बैठा। इसको वहाँ से कान पकड़कर उठा दो।"

हुक्म की देर थी, सबके सामने मुन्नूख़ाँ बेइज्ज़ती से दरबार के बाहर कर दिए गए, और अब जलसा शुरू हुआ। पहले वही पंजाबी अपनी ओर की एक चीज़—टप्पा—सुनाने लगा।

गीत चलता याने द्रुत गतिवाला था। गवैया की आवाज़ में भी मिठास वैसी न थी। कुछ क्षणों से अधिक महाराज उसको न सुन सके—

"दूसरा!"

इस बार वज़ीर ने किसी लखनौवे की तरफ़ इशारा किया, मगर उसके आने से पहले ही गवैए के आसन पर एक साधू आ जमा, और लगा नक़्क़ाल उतारने। पहले गायक की कर्क-शता की।

हालाँकि साधू की यह गुस्ताख़ी थी, और ज़रूर उसको भी बेइज्ज़ती से निकालना चाहिए था। वज़ीर झपटा भी उसकी तरफ़, लेकिन स्वयं महाराज ने बाधा दी—"ख़ूब नक़ल करते हैं बाबाजी, वाह!"

अब निकालना तो दूर महाराज के मुँह से 'वाह' निकलते ही चाँदी की तश्तरी में हज़ार रुपए लाकर वज़ीर ने साधू के सामने रख दिए।

"अब दूसरा गवैया...."

हुक्म होते ही लखनऊवाला गायक सामने आया, और

साधू चुप हो गया, मगर उस जगह से हटा नहीं। लखनौवे ने कई क़ौवालियाँ सुनाईं—और बढ़िया-बढ़िया। सरकार की इच्छा से उसे भी हज़ार की तश्तरी मिली।

"हाँ बाबाजी!"—महाराज ने प्रसन्न हो साधू को लल-कारा—"ज़रा लखनऊ के उस्ताद की नक़ल भी कीजिए।"

साधू ने लखनऊ के क़ौवाल की ऐसी नक़ल उतारी सटीक कि सारी मजलिस के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ गए। और साधू ने एके-बाद-दीगर दस उस्तादों की खिल्ली उड़ाई। दसों बार महाराज खुश हुए, और दस बार उपहार की तश्तरियाँ साधू के सामने वज़ीर रखता रहा।

ओह! दस हज़ार! साधू का दिमाग़ फिरने लगा। उसने अंदाज़ लगाया कि हिंदू राजा-रईस साधू की मुट्ठी में फँसने पर जो न दे दे, वही कम है। फिर तो अतिशय रंग बाँधने के लिये वह देहाती साधुता दिखाने लगा—राज-दरबार में!

"अरे मैं—पिऊँगा रे!"

"क्या पीएगा साधु?"—महाराज ने दरियाफ़्त किया।

'दुधुआ रे! मैं बोतल का दुधुवा पिऊँगा।"

और महाराज ने, साथ-ही-साथ सारे समाज ने साधू को तांत्रिक अघोड़ी माना। अघोड़ी! दरबार में! महाराज को मन-ही-मन इस साधू को परकाने का अफ़सोस होने लगा—"बस, इस साधू को भी निकालो। यह पागल मालूम पड़ता है।"

आज बाहर के कलाकार महाराज को संतुष्ट न कर सके। अतः उन्होंने अपने उस्ताद गुलाबख़ाँ से वीणा बजाने की इच्छा प्रकट की। अब रात दो बजने का वक्त, था। मजलिस के प्रत्येक प्राणी की आँखों में एक साथ ही जागरण और निद्रा फाग खेल रहे थे। अब उस्ताद की वीणा सुर में मिल गई। अब कई चमकती मिज़राबें उँगलियों के बल पर तारों पर नाचने लगीं। उस्ताद ने 'परज' रागिनी बजाना शुरू किया।

और मीठे, मुलायम, मंद, करुण-स्वर सारी सभा के हृदय-हृदय पर नाचने लगे। उस्ताद अपनी कला में इतने लीन हो गए कि उन्हें खयाल ही न रहा राजदरबार का। सरदार और सरकार भी स्वरों के समुद्र में ऐसे डूब गए कि उन्हें यह भी ध्यान न रहा कि वीणा महज़ काठ है और लोहा—और बजानेवाला मामूली मनुष्य। सभी झूमने लगे !!

कला का ऐसा पवित्र प्रदर्शन उस्ताद गुलाबख़ाँ ने मजलिस में किया कि स्तब्ध दर्शकों के मुँह से 'वाह' तक न निकल सकी। वही, 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाली बात !

महाराज मदनसिंहजी तो राजासन से खिसकते-खिसकते नीचे, दूर—कलाकार के स्वर-विस्तार के निकट आ रहे वैसे ही, जैसे महुवर के स्वर से बिल से खिंचकर सर्प मुग्ध चला आता है। गुलाबख़ाँ उस्ताद अभी 'परज' ही बजा रहे थे, और प्रभात हो गया। संगीत-कला के हज़ारों गुणी मजलिस में थे, मगर गुलाबख़ाँ के जमे हुए राग-रंग के सामने किसी के मुँह

से यह तक न निकला कि अब राग या रागिनी बदल देने का वक्त हो गया। 'परज' नहीं अब 'भैरव', 'भैरवी' या 'टोड़ी' छिड़नी चाहिए।

मजलिस बरखास्त होने से क़ब्ल महाराज बहादुर के इशारे से उस्ताद गुलाबख़ाँ के सामने हज़ार-हज़ार की पाँच तश्तरियाँ वज़ीर ने रक्खीं।

इतने नक़द रुपए अकेला रहीम नहीं सँभाल सकता था, इसलिये रियासत के चार सिपाहियों को साथ ले, वीणा बग़ल में दबा, नमाज़ पढ़ने के लिये उस्ताद गुलाबख़ाँ मसजिद की तरफ़ चले।

कलाकार का दिल

रास्ते में ज़रा मौक़ा पाते ही रहीम बोला—"वाह उस्ताद, हुज़ूर ने आज ऐसा रंग बाँधा कि 'आल इंडिया' के क़सबी अपना-सा मुँह लिए रह गए!"

"तिस पर भी राजा मरदूद ऐसा कंजूस है कि महज़ पाँच हज़ार दिए....!" उस्ताद अपने सामने किसी को उदार मानते ही न थे।

"जागीर देनी चाहिए आप-ऐसे गुनवंत को।"

"अगले ज़माने में यों ही होता था, मेरा मतलब शाही ज़माने से है। उन दिनों कलावंत पर ख़ुश होते ही रईस उसको निहाल कर देता था, और आजकल के राजा-रईस बहुत ख़ुश होंगे, तो वाह-वाह करेंगे या 'सार्टिफिकिट' लिख देंगे या निहायत ख़ुश हुए, तो रोटी पर मठे की तरह किंचित् धन दे देंगे। यही धन पहले भी था, और अब भी है, मगर आदमी-आदमी में फ़र्क़ होने की वजह से एक ही काजल और चितवन भाँत-भाँत है!"

"वह ज़माना ही कुछ और था हुज़ूर।"—रहीम गंभीरता से बोला—"फिर भी ये पाँच हज़ार इस वक़्त बड़े काम के होंगे। तीन महीने से मोदी को एक पैसा नहीं दिया गया है,

कलवार के पास दो तंबूरे और तीन सितार गिरवीं रक्खे हुए हैं !"

इसी वक्त उस्ताद के एक दोस्त नज़र आए।

"आ हा !" आप....कहो मियाँ सिद्दीक़ ! आज जनाब का तस्वीरे चेहरा उतर क्यों गया है ?"

"क्या बताऊँ उस्ताद" सिद्दीक़ मियाँ बोले—'पारसाल लड़की की शादी के लिए सात सौ रुपए लिए, सो आज तक वापस न कर सका। वादा छ महीने का था; आख़िर उसने नालिश कर दी—आज पेशी है। यहाँ अपने पास ज़हर खाने तक के लिये भी...."

"मआज़ अल्लाह ! अरे सिद्दीक़ मियाँ, ज़हर खाएँ तुम्हारे दुश्मन; चाहिए क्या तुम्हें ? कितने रुपए बनिए के होते हैं ?"

"सूद, दरसूद मिलाकर एक हज़ार पूरा !"

"लानत है इस सूदखोरी पर ! हिंदुओं का सूद शैतान की आँत-सा फैलता है। अच्छा, मैं देता हूँ। रहीम ! हज़ार रुपए की जो तश्तरी तेरे हाथ में है, भाई सिद्दीक़ को दे दे। अपना अल्लाह यार है, तो बेड़ा पार है।"

उस्ताद से रुपए ले, झुक-झुककर सलाम करते सिद्दीक़ मियाँ अपने रास्ते लगे।

"देखा बेटा ! कितनी मुसीबत है दुनिया में ! एक ज़माना था कभी मियाँ सिद्दीक़ का भी। नव्वाबी ख़ानदान के हैं। लेकिन

आजकल बेचारों के लिये ज़मीन सख्त और आसमान दूर है। ऐं! यहाँ भीड़ कैसी?"

एक जगह ख़ासी भीड़ देख उस्ताद रुके। दरियाफ़्त करने पर राज़ खुला कि किसी ग़रीब बेवा के घर में पिछली रात ऐसी आग लगी, जिसमें बेचारी का एकलौता लख़्ते-जिगर जल-भुनकर ख़ाक हो गया, और सारी लेईपूँजी के साथ! बुढ़िया ऐसे दर्दीले सुर से रो रही थी कि सुननेवालों का कलेजा मुँह को आता था।

"रहीम!" उस्ताद ने आवाज़ा दी—'हज़ार रुपए की तश्तरी इस बेवा को भी दे दे। आह! दुनिया में बड़े बड़े दुख हैं।"

उस्ताद का शाही दान देखकर दर्शक मन ही-मन चकित हो गए। चाँदी के चमत्कार से प्रकाशित हो बूढ़ी बेवा का शोकांधकार भी ग़ायब हो गया! दोनो हाथ आसमान की तरफ़ उठा वह लगी दुआएँ देने—

"बेटा! तू दूधों नहा, पूतों फले! तू राजा हो जा—भगवान् तुझे जन्नत दे!"

"चल रहीम!" मुस्किराते उस्ताद ने कहा—"हज़ार रुपए लेकर बदले में बुढ़िया बद दुआएँ दे रही है। जीते ही जी मारना चाहती है—जन्नत भेजकर। चल भाई भाग! ज़माना नाज़ुक है।"

थोड़ा ही आगे जाने पर उस्ताद ग़ुलाबख़ाँ ने भिखारियों का एक झुंड देखा, जो सड़क की पटरी पर फैला हुआ था।

"हैं ! ये क्या रात पटरी ही पर गुजारते हैं ?"

"और नहीं तो क्या महल खुले हैं इनके लिये !"—एक सिपाही ने बिना पूछे ही तीव्रता से उस्ताद को जवाब दिया।

"अह ! यह माह-पूस की सर्दी...ये क्या नंगे ही पड़े रहते हैं ?"

"हद से हद कहीं से काठ-कबाड़ ला, सुलगाकर, रात में अपने को गरमाते होंगे। कपड़े पास कहाँ ?" रहीम ने जवाब दिया।

"उफ़ !" उस्ताद सजल हो उठे—"दुनिया में बहुत मुसीबतें हैं और सब-के-सब बे सुर, बे-ताले। हे हे नंगो ! मेरे साथ आओ ! ख़ुदा के हुक्म से मैं तुमको कुछ दूँगा।"

अब धर्मपुरवालों ने देखा—देखा आगे-आगे उस्ताद गुलाबख़ाँ, रहीम और राजा के सिपाही तथा उनके पीछे सैकड़ों कँगले, लूले-लँगड़े !

बाज़ार में आ उस्ताद ने एक-एक को गर्म कंबल और मज़-बूत कोट ख़रीदकर पहनाया। ऊपर से दस-दस रुपया भी सबको दिया !

जब उस्ताद मसजिद के पास पहुँचे, तब एक सिपाही के हाथ में, एक तश्तरी में एक ही हज़ार रुपए बच गए थे।

मसजिद के फाटक ही पर तो, कोई फ़क़ीर एकतारा बजाकर कुछ गा रहा था। गा रहा था—"जब दिया दिल, तो फिर

अंदेश ए रुसवाई क्या !" उसका सुर मीठा था। चमककर उस्ताद खड़े हो गए!

"वाह ! मियाँ फ़क़ीर ! तुम्हारा गला तो मुझसे भी अच्छा है।"

बाबा ! मैं भिखारी हूँ—ख़ुदा का नाम गानेवाला—और आप शाहों को मुट्ठी में करनेवाले उस्ताद—कहाँ राजा भोज, और कहाँ गँगुवा तेली !"

"ख़ुदा तो राजाओं का भी राजा है, शाहों का बादशाह !"

"होगा" फ़क़ीर बोला—"मगर देता कुछ नहीं। दिनों-रात मैं उसकी नमाज़ें गाया करता हूँ, और मुझ अल्लाह के ख़ादिम को पेट भरने के लिये भीख माँगनी पड़ती है !"

"शाहों के इनाम और ख़िलअतों से" दावे से उस्ताद ने कहा—"ख़ुदाई राह के टुकड़े ज्यादा पाक होते हैं, हज़रत ! फिर भी आप बे-सब्र हैं, तो लीजिए, हाज़िर है। म्याँ सिपाही ! वह पाँचवीं तश्तरी हज़रत की नज़र कर दो !"

फ़क़ीर तो रुपए ले, बदले में उस्ताद को दुआएँ दे नौ-दो ग्यारह हो गया; मगर उस्तादजी दुनिया की मुसीबतें सोचते मसजिद के बाहर ही खड़े रहे।

"घर चलना है उस्ताद !" सारे रुपए तक़सीम हो जाने से उदास रहीम बोला—"मसजिद में चलिए, नमाज़ पढ़ लीजिए।"

"अब नमाज़ हो गई बेटे ?" भरे हुए गले से उस्ताद ने

कहा—"राजा के रुपए नापाक थे, उन्हीं को पाक करने के लिये नमाज़ों की ज़रूरत थी। विना रुपए नमाज़ों की ज़रूरत वैसे ही नहीं है, जैसे गंदगी विना साबुन की। किसी ताँगेवाले को बुला—रसूलपुर चलें।"

"मगर हुज़ूर" रहीम ने कहा—"ताँगेवाले को देने के लिये मेरे पास रुपए तो नहीं हैं।"

"रुपए तो मेरे पास भी नहीं हैं। अच्छा, शुकर है खुदा का बेटे, चल, पैदल-ही पैदल चलें। बीन को तू काँधे पर ले ले !"

दाँतों-उँगली दाबते राजा के सिपाहियों ने देखा—आगे उस्ताद गुलाबखाँ, पीछे शागिर्द रहीम रसूलपुर की तरफ़ पैदल ही चले !"

"पाँच हज़ार रुपए !" आश्चर्य से एक सिपाही बोला—'जानवरों में बाँटकर यह आदमी तकलीफ़ उठा रहा है !"

"यह आदमी नहीं, पागल है ! दीवानों के सिर में कुछ सींग नहीं होते !" दूसरे सिपाही ने फ़तवा दिया, जिसको एक स्वर से औरों ने मंज़ूर कर लिया—"बेशक ! बेशक !"

तैयारी

धर्मपुर-महाराज के जिस जलसे का तज़किरा हमने आगे किया है, उसी में एक दूसरे भारतीय महाराज और कोई नवाब साहब भी निमंत्रित थे। उक्त महाराज और नवाब महाराज मानसिंह के मित्र थे। और, मित्रता भी ख़ानदानी—अकबर जहाँगीर के वक्त की थी।

उक्त राजपरिवारों में अकबर-जहाँगीर के वक्त में जो पगड़ी-बदल-मित्रता की जड़ जमाई गई थी, वह इस सफ़ेद युग में किन किन अजीब रंगों में फूल, फल और फैलकर—उखड़-पुखड़, बिखर गई—यही सुनाने या बतलाने के लिये इस कहानी को हमने शुरू किया है।

जिस वक्त रसूलपुर का वह अद्‌भुत गवैया हज़ारों रुपए लुटाकर ख़ुद ख़ाक छानता हुआ अपने घर की तरफ़ जा रहा था, उसी वक्त धर्मपुर के 'ऐशबाग़' में—?

ऐशबाग़ में धर्मपुर-राज्य के दोनो मित्र-शासक—महाराज अजबगढ़ और नवाब आक़िलाबाद—गुलाबी मारबल की छोटी मेज़ के दोनो ओर घूमनेवाली विलायती गद्दीदार कुरसियों पर बैठे—महँगा, सुगंधित, फ़्रांसीसी चुरुट पीते धुआँधार बातें कर रहे थे—

नवाब—"बखुदा ! राजा साहब धर्मपुरवाले निहायत रईस तबियत और दिलदार हैं !"

राजा—"हिः !"

नवाब—"याने ? क्या मैं ऐसा समझूँ कि राजा साहब ताने से—किसी दीगर माने से—हिः ! कह रहे हैं ?"

राजा—"हिः !" इसलिये किया मैंने जनाब कि राजा धर्मपुर से—अपना खानदानी संबंध होते हुए भी—मैं बुरा मानता हूँ।"

नवाब—"आप ? बुरा मानते हैं, मदनसिंहजी से ? वाह ! मगर आप दोनो हमेशा मिलते तो ऐसे हैं, जैसे दो जिगरी दोस्त। कल भी आप दोनो गले मिले थे।"

राजा—"वे सब दिखाऊ नाटक हैं। एकाएक हरएक रस्म बंद कर देने से दुश्मन होशियार हो जायगा।"

नवाब—"तोबा मेरी ! दुश्मन कौन ? किसका ? राजा साहब आप मुझे नशे में न समझिए। मैं सख्त पियक्कड़ हूँ, मगर शाम से सुबह तक। सुबह से शाम तक पीनेवालों को मैं पागल मानता हूँ। दिन का नशा, मौत बिना मरना। कल आप जिसके गले से मिल आए हैं, उसी से दुश्मनी ?"

राजा—"आप जानते नहीं नवाब साहब, मैं तो पड़ोस का राजा हूँ। मदनसिंह निहायत घमंडी है। वह अपने को हरएक राजा से बड़ा, बुद्धिमान उदार—छिः ! उद्दंड समझता है। उस दिन उसने ऐसा घोर अपमान किया मेरा, जिसे मैं

भूलूँगा नहीं। तब तक, जब तक मदनसिंह की हस्ती मिट्टी में न मिल जाय।"

नवाब—"हुआ क्या ? कैसा अपमान—राजा साहब, मदनसिंहजी निहायत शाइस्ता और इज्ज़तदार राजा हैं—अपमान तो शायद वह कर ही नहीं सकते।"

राजा—"सुनिए भी, तब गाइएगा उसकी तारीफ़ों के क़सीदे। माफ़ कीजिए, मेरे मुँह से सख़्त फ़िक़रा निकल गया। मगर करूँ क्या ? मदनसिंह की तारीफ़ मैं सुनना ही नहीं चाहता।"

नवाब—"वजह ! मैं पूछता हूँ, सबब ?"

"सुनिए।" राजा साहब अजबगढ़ ने नवाब साहब को एक लंबा-चौड़ा दास्तान कोई सवा घंटे में सुनाया। सुनाया—

"सभी भारतीय नरेश उस साल के तिलकोत्सव में लंदन गए थे। और, आप जानते हैं, मैं तो दो बरस पहले ही से विलायत में डटा था। मैं समझता हूँ, आप पूछेंगे, क्यों ? हाँ, मैं आशिक़ हो गया था एक कर्नल की लड़की पर। वह लड़की उन दिनों रूप की रानी-सी थी। वह पैदा हुई तुर्किस्तान में, बढ़ी मिस्र में और शिक्षिता हुई थी फ्रांस में। मेरा उसका 'लव' हो गया था।

"यह ख़बर अचानक एक दिन मैंने ही धर्मपुरवाले को सुना दिया—सुना दिया इसलिये कि बिना किसी को सुनाए चैन नहीं पड़ता था। और मैंने एक दिन उसको उस होटल में दावत दी, इसलिये कि मेरा प्रतिद्वंद्वी ज़रा देखे, विलायत में भी कैसा रंग है मेरा; मगर पाँसा पड़ा उलटा, वह दावत झख मारने को मैंने दी।

"क्योंकि मदनसिंह को देखते ही वह पगली मुझे भूल गई, और मैं टापता ही रहा, और मदन—धर्मपुरवाला यह चोर—उसे फँसाकर यहाँ तक लाया। सुना है, करोड़ों की संपत्ति मदनसिंह ने उस गोरी को आगा-पीछा भूल कर दी।

"मैं भी उसको सब कुछ देता, अगर वह कर्नल की तुर्की छोकरी दग़ा न दे जाती, मगर हाथ मारा मदनसिंह ने, जिसके लिये मैं उसकी जान मारूँगा। जान—वह गोरी मेरी जान थी!"

"मआज़ अल्लाह!" हैरत से नवाब साहब ने कहा—"क़िस्सा तो आपका निहायत दिलचस्प है। यह शायद मिस डार्लिंग की...!"

"ठीक! बिलकुल ठीक!" राजा साहब 'डार्लिंग' शब्द सुनकर पिछले प्रेम-संस्मरण से उछल पड़े।

"मिस डार्लिंग और महाराज मदनसिंह का मामला" नवाब साहब ने फ़रमाया—"जहाँ तक मैंने सुना है, काफ़ी मशहूर है। पहले तो दोनो की ख़ूब ही पटी, मगर जब मदनसिंहजी दूसरे फूलों का रस लेने लगे, तब मिस साहिबा 'अन-रस' रस देने लगीं। आख़िर बात वायसराय तक गई। अगर मदनसिंह ने करोड़ों ख़र्च न किया होता, तो आज वह राजा न रह जाते!"

"राजा तो मैं न रहने दूँगा उसे! घुटी मूँछों पर क्षुद्र ताव देते हुए अजबगढ़ के राजा ने आक़िलाबाद के नवाब से कहा—"मैं ऐसी-ऐसी भड़कीली सुरंगे लगा रहा हूँ मदनसिंह

की नींव में कि एक धड़ाके में—और वह भी 'साइलेंटर' धड़ाके में—मैं उसे चकनाचूर कर दूँगा।"

"कैसे ? आखिर कैसे—मैं भी सुनूँ ?"

"मैं इंतजाम ऐसा कर रहा हूँ, जिससे मदनसिंह के पुराने सलाहकार और वजीर हटाए और नए वहाँ जमाए जायँ।"

"ऐसे ऐसे सलाहकार जैसा वह...रियासतवाला वजीर रंगीनख़ाँ है।" नवाब ने अटकल लगाया।

"रंगीनख़ाँ को तो मैं आजकल में धर्मपुर-राज्य में घुसेड़ देता हूँ। सब इंतजाम ठीक है। मदनसिंह और रेजिडेंट ने मंजूरी भी दे दी है। रंगीनख़ाँ विलायत देखा, बोलने में रुस्तम और चापलूसी में कुत्ता है। एक बार उसको कोई भी रईस पसंद कर लेता है—मगर जिस-जिस राज्य में भी आज तक उसके सब्ज कदम पड़े, उस-उसको रंगीनख़ाँ ने बिलाशक बदरंग कर दिया।"

"और ?" राजा साहब को रुकते देख नवाब ने पूछा।

"और, अब आगे-आगे देखिए, होता है क्या—जल्द ही धर्मपुर राज्य का नाम तरह-तरह की साजिशों से चमकेगा !"

कला का पुरस्कार

आधी राह तय करते-करते धूप तेज चमकने लगी। हठी हजार रहे हों उस्ताद गुलाबख़ाँ, मगर पैदल चलने की आदत गत चालीस बरसों से उन्हें न थी। एक बार ख्याति होते ही वह हमेशा राजा-रईसों के सिर-चढ़े 'उस्ताद' बने रहे। उनका तो कहना था—"रईस सारे हम कलाकारों के ग़ुलाम हैं, न कि हम। ये कमाते-जुटाते हैं, हम खाते-उड़ाते....!"

इसी सिद्धांत से उस्तादजी रईसों की अच्छी से-अच्छी वस्तुएँ ही अपने काम में लाते थे। महाराज की पगड़ी, नवाब का अचकन और राजा या करोड़पति रईस के दोशाले ही से उस्ताद का संतोष होता था। राजाओं के लिये चुन-बिनकर लाई गई माशूक़ाएँ पहले उस्ताद से—'साँची कहो मोसे बतियाँ' के स्वर और भाव समझती थीं। अक्सर 'दवा' के जोश में उस्तादजी बहक उठा करते थे—दुनिया में अगर कोई राजा है, तो मैं हूँ। मेरे आगे हुँः! राजा क्या ऐश करेगा, जिसके सिर पर चौबीस घंटे में पचीस हज़ार मुसीबतें ताताथेई करती हैं।"

सो आज धर्मपुर से रसूलपुर की ओर मामूली ग़रीब मनुष्य की तरह पाँव घसीटने से उस्ताद को तक़रीबन् आटा-दाल का

भाव मालूम हो गया। माथे से पसीना छूटने लगा। आधे ही मंज़िल पर—"बेटा रहीम! ज़रा उस बरगद के नीचे दम ले लिया जाय। अर्से के बाद आज चलने का मौक़ा मिला है।"

बट की एक उभरी जड़ पर बैठकर उस्ताद ने, वीणा रखते हुए शागिर्द रहीम को, चेतावनी दी—"देखोजी! अब से हमेशा पास में कुछ रुपए रक्खा करो।"

"हुज़ूर!" रहीम अभी तक पाँच हज़ार जाने के धक्के से मन-ही-मन हिल ही रहा था—"ख़ाला ने रुपए नहीं दिए यों कि उन्हें मजलिस से खिलअत और इनामों की उम्मीद थी। वह जब सुनेंगी कि पाँच हज़ार रुपए....!"

"अजी म्याँ रहीम!" खीझे उस्ताद—"यह जो ख़ाला हैं तुम्हारी—कैसे कोई समझा सकेगा इन्हें। पाँच हज़ार रुपए एक मजलिस में, चंद घंटे में मैंने कैसे—किस .कूबत से पैदा किया—इंसानी या ख़ुदाई। मैं कहूँगा जहाँ 'असर' है, वहीं अल्लाह है, और मेरी कला में जो भी 'आमद' है, प्रतिभा या प्रसाद है, ख़ुदा की देन है। जैसे मंदिरों-मसजिदों को दूकान नहीं बनाना चाहिए, वैसे ही कला की कमाई से कलावंत को ऐयाशी भी नहीं करना चाहिए।"

"मैं नहीं समझा उस्ताद, क्या फ़र्माया हज़रत ने!"

"ऐयाशी से मेरा मतलब है, तुम्हारी ख़ालाजी की फ़िज़ूल माँगों से। इसके लिये दस चाहिए; उसके लिये बीस। सौ हों,

तो यह काम हो, और पाँच सौ हों, तो वह! यह ऐयाशी है। खालाजी को हद-से-हद पंद्रह रुपए महीने में गुज़ारा चलाना चाहिए।"

"और हुज़ूर की दवा? उसमें तो तीन से लेकर तेरह रुपए रोज का ख़र्चा है।"

"खुदा तुझे ग़ारत न करे—रहीम तूने ख़ूब याद दिलाई। भला, जब दवा ही के लिये सैकड़ों चाहिए, तब.. अरे! देख तो! सामने धूल उड़ रही है। कौन रो रहा है?—कौन? रहीम—रहीम!"

इसी वक्त कई सवारों का एक झुंड दोनो के सामने से बिजली की तेजी से गुज़र गया! फिर भी उस्ताद शागिर्द दोनो ने देखा, एक घोड़े पर मुड़ा-सा बाँधे कोई तगड़ा आदमी किसी औरत को बाँधकर लिए जा रहा था, और वह औरत मरी हुई आवाज से कराह रही थी—"बचाओ! बचाओ!"

"ये कौन लोग हैं रहीम?"

"मैं क्या कह सकता हूँ हुज़ूर!"

"किसी औरत को भगाए लिए जा रहे हैं जबरदस्ती! बेटा रहीम! देसी राज्य से अँगरेज़ी राज्य लाख दर्जे अच्छा है, जहाँ सबकी बहू-बेटी की इज्ज़त तो महफ़ूज़ रहती है। इन रियासतों में राजा और उनके सिर-चढ़े, मन-चले सरदारों के मन पर परजा और सबकी इज्ज़त रहती है। एक जमाने के बादशाह या ताजोतख़्तदार ऐसे होते थे, जो

रिआया की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझते थे, उन्हीं के राज्य में दूध की गंगा या शहद की जमना बहती थी। और, इनके इन कुटुंब-प्रजा-गामियों के राज्य में—ग़रीब है, ग़ुलामी है, गुंडापन और ग़बन है। चल बेटे! यह बेचारी औरत ऐसी सुरीली रो रही थी कि देख! मेरे रोंगटे तभी से बार-बार खड़े हो रहे हैं। मेरा दिल बैठ-सा क्यों उठा—इस वाक़या से रहीम!"

मगर रहीम पाँच हज़ार रुपयों के खोनेवाली बात ही सोच रहा था—"और हुज़ूर! फ़ीरोज़ी के लिये वैसे तो आप हमेशा धरमपुर से कुछ-न-कुछ ले जाया करते थे, मगर आज चि-चि-चि!" उस्ताद पछताने लगे—"इतनी दूर आने पर बदमाश याद दिलाता है। बेचारी लड़की क्या सोचेगी—आह रहीम, वे उस औरत को किस गाँव से पकड़े लिए जा रहे थे! अफ़सोस और बातों में ख़ासे समझदार होने पर भी हमारे महाराज औरत के मामले में निहायत कच्चे हैं। जब से इन्होंने होस सँभाला, तब से आज तक औरतों के लिये इन्हें क्या क्या तकलीफ़ें उठानी पड़ीं कि तौबा! सूज़ाक हुआ, गर्मी हुई, शिमले दौड़े, लंदन का मुँह भी देखा,....यहाँ तक कि पारसाल तो एक मेम के पीछे राज-ताज भी जाते-जाते रहा! फिर भी आदत न गई। यह बेचारी भी मदनसिंह ही के लिये बड़ाई गई होगी।"

रहीम जानता था कि उस्ताद बोलते बहुत हैं, और बहुत

बेतकल्लुफ़। सबके सामने तक़रीबन् सभी बात। अतः किसी लंबी गाथा में, 'हूँ', 'हाँ' से ज्यादा दिलचस्पी वह नहीं रखता था। फिर आज तो उस्ताद की फ़ैयाज़ी से वह भी नाखुश था। पाँच हज़ार रुपयों से बड़ा महत्त्व वह न तो रियासतों को देता था, और न राजाओं के विलास को।

साज़िश

धर्मपुर-दरबार के दूसरे ही दिन महाराज ने सैयद रंगीनख़ाँ को अपना पहला सेक्रेटरी नियुक्त किया। नियुक्ति के होते ही पहला जो काम रंगीनख़ाँ ने किया, वह है उस्ताद गुलाबख़ाँ की शिकायत।

"हुज़ूर माफ़ करें!" तरकीब से बोला नया सेक्रेटरी—"हुनरमंद को प्यार ज़रूर करना चाहिए रईस को, मगर सिर पर कभी न चढ़ाना चाहिए। मेरे ख़याल से उस्ताद गुलाबख़ाँ का तरीक़ा निहायत नामाकूल था।"

"क्या किया उस्ताद ने? सुनिए ख़ाँ साहब!" महाराज मदनसिंह ने मुस्किराकर समझाया नए सेक्रेटरी को—'अच्छे हुनरमंद कुछ सनकी होते ही हैं—हमें हुनर को दाद देनी चाहिए, और ग़लतियों की माफ़ी।"

"मगर हुज़ूर! एक होती है भूल, और दूसरी होती है गुस्ताख़ी!" रंगीनख़ाँ राजा को भड़काने लगा—"दरबार से मिले सारे इनाम को घूम-घूमकर राजधानी में तक़सीम कर देने का मतलब साफ़ है राज्य का 'इंसल्ट'। ग़रीबपरवर! राज्य के 'इंसल्ट' पर ग़ैर राज्यों में लोग फाँसी तक पाते हैं। सल्तनत या हुकूमत कला और साहित्य के तराज़ू पर नहीं तौले जा सकते।"

"फिर ?" ज़्यादा बहस से ऊबकर कुछ भी करने पर आमादा महाराज धर्मपुर ने पूछा—"फिर ? मैं भी उस्ताद गुलाबखाँ को फाँसी दिला दूँ ? क्यों, मैं फाँसी दे सकता हूँ ? मगर बात इतनी ही है कि वीणा का एक ज़बरदस्त बजानेवाला सतहे-ज़मीं से सदा के लिये उठ जायगा। आप मेरे सेक्रेटरी—दसों रियासतों की ख़ाक आपके चेहरे पर है, बतलाइए, मैं क्या सज़ा दूँ कलाकार को ?"

"उसको सल्तनत लाचार करे इस बात पर कि वह लोगों से रुपए माँगकर राज्य को जल्द-से-जल्द वापस दे दे।"

"नहीं तो ?"

"नहीं तो जो ग़रीबपरवर...."

"नहीं तो पाँच साल वह जेलख़ाने में बितावे—एक-एक हज़ार के ऊपर एक साल। क्यों सेक्रेटरी साहब ?"

"रहे ज़मीन पर, और कहे आसमान की ! मामूली आदमी ने राजपुरस्कार का अपमान कर दिया। गुनाह इंडियन और ब्रिटिश दोनो क़ायदों से निहायत संगीन है।"

"संगीनदार !" राजा तैश में चिल्ला उठे। अब उनका दिमाग़ उस्ताद के ख़िलाफ़ फिर गया—"पंद्रह संगीनदार सवार दौड़ो। मंत्रीजी, भेजिए और कंगाल मुसल्ले को गिरफ़्तार कराइए। मैं उसका शासन करूँगा।"

राजा के घर हुक्म का दरिद्र ! पंद्रह की जगह पच्चीस घोड़-सवार उस्ताद गुलाबख़ाँ की तरफ़ झपटे।

इसके बाद नया सेक्रेटरी राजा मदनसिंहजी के कान के पास कुछ फुसफुसाता रहा, जिसके चंद अल्फ़ाज़ बमुश्किल सुनाई पड़े—

"औरत ...?"

"निहायत हसीन और जवान....!"

"पकड़वा मँगाओ। इसमें - चीफ़ सेक्रेटरी ! तुम्हारे पूछने की क्या ज़रूरत। मगर सुनो तो, किसकी औरत ?"

"औरत नहीं, जवान लड़की ."

"किसकी ?"

"इसी बाग़ी गुलाबखाँ...।"

"उस्ताद की ? क्या कहा सेक्रेटरी !"

"निहायत हसीन —नमूना हुज़ूर ! चाँद का टुकड़ा !"

"मँगाओ ।"

"आ गई !" बाहर से हाँफता आकर एक सवार ने सलाम किया। "गुलाबखाँ की लड़की को हम ज़बरन पकड़ लाए।"

"कहाँ है वह चाँद का टुकड़ा ? ज़रा देखना चाहिए।"

आगे राजा मदनसिंह, पीछे प्राइवेट सेक्रेटरी सैयद रंगीनखाँ दौड़े तेज़ी से।

फ़ीरोज़ी

क़स्बा रसूलपुर में दाखिल होने पर उस्ताद ने कुछ सनसनी-सी देखी। देखा, सड़कों पर झुंड-के-झुंड लोग खड़े बड़ी उत्सुकता से किसी बात पर बहस या ग़ौर कर रहे थे।

उस्ताद पर नज़र पड़ते ही क़स्बे के लोग एक अजीब अंदाज़ से खामोश हो जाते थे। ऐसे अंदाज़ से, जिसे महसूस कर उस्ताद के मन में ठेस लगने लगी। हमेशा तो क़स्बे के लोग उस्ताद को देखते ही झुककर सलाम करते थे, मगर आज सलाम करनेवाले सौ में पंद्रह ही नज़र आए। भेद-भरी दृष्टि से सभी ने देखा उन्हें।

तेज तबियत उस्ताद ने लोगों की इस हरकत को मन-ही-मन बेहूदा समझा, और तेज़ी से घर की तरफ़ बढ़े। मगर उनके दिल का दिल उदास-सा होने लगा। भीतर कोई 'साँय-साँय' स्वर में कुछ अस्पष्ट अपशकुन सुनाने लगा।

दरवाज़े पर आते ही उस्ताद धक से हो रहे। उन्होंने घर की अनेक चीज़ें द्वार पर टूटी-फूटी या बिखरी दशा में देखीं। ताँबे का घड़ा ज़ोर से पटकने से पिचककर गली में लुढ़का था। उस्ताद की हैदराबादी फ़र्शी दरवाज़े के बीच में तिरछी पड़ी थी। वह सितार, जिसे उस्ताद को कलकत्ता के किसी

बंगाली राजा ने उपहार में दिया था, और जो दो सौ वर्ष का पुराना शाही ज़माने का था, चकनाचूर गली की धूल में नहा रहा था। सारी गली और दरवाज़ा घोड़ों के खुरों से खुदा नज़र आता था।

"ऐ रहीम! राह में वे डाकू किसको पकड़े लिए जा रहे थे? क्या ऐसा हो सकता है? कभी नहीं, महाराज मुझे अपने पिता-सा रहीम ...!"

"क्या माजरा है? अंदर तो आइए!" रहीम तेज़ी से घर में घुस गया, और थोड़ी देर बाद अंदर से चिल्ला उठा—"दौड़िए! उस्ताद दौड़िए!! कोई बदमाश ख़ालाजी को छुरा मार गया है!"

दौड़े अंदर जाकर उस्ताद गुलाबख़ाँ ने अपनी बीबी को ख़ून से लथपथ, बेहोश ज़मीन पर अधनंगी हालत में पाया।

"अल्लाह! परवरदिगार! दौड़िए! रहीम भागता जा, और ठंडा पानी ला। ट्रंक में गुलाब की शीशी है। उसको भी लेते आइयो! अल्लाह! मैं क्या देख रहा हूँ, फ़ीरोज़ी! ख़ुदा तुझे ग़ारत न करे मुई! तू कहाँ गई?"

"फ़ी...रो...ज़ी" बेहोशी से जागती धीरे-धीरे बेगम बोलीं—"पकड़ ले गए खुदा मारे! मैंने बहुत बचाना चाहा, देखो न मेरी हा...ल....त...!"

और बेगम—उस्ताद की धर्मपत्नी—गुलाब या जल आने

से पहले ही चल बसीं! अपने विख्यात गुणवंत, उदार, खाविंद की गोद में सिर रक्खे!

"खाला जी...अम्माजी!" रहीम घिघियाकर रोने लगा, गुलाब की शीशी ज़मीन पर गिरकर चूर हो गई।

पानी का बधना उसी के पैरों पर गिर जीवन-हीन हो गया।

रहीम रोता रहा, और उस्ताद चुप रहे—सुन्न! रहीम कुछ देर तक रोता ही रहा, और उस्ताद चुप रहे।

उस्ताद न तो बीवी की तरफ़ देखते थे, और न रुदित रहीम की। उनकी आँखें निर्जल, मगर वज्र-सी तेजस्विनी शून्य की तरफ़ देख रही थीं। उस्ताद इस वक्त ध्यानावस्थित जादूगर या योगी से मालूम पड़ते थे।

"वह...वह ख़ुदा की दी हुई लड़की—ख़ुदा की लड़की... रहीम! रहीम! अरे बदज़ात, बुज़दिल रोता क्या है?...."

"खालाजी! मेरी अच्छी अम्माजी!" रहीम उस्तादिन की याद कर दिल से रो रहा था।

अब, अब उस्ताद के भाव भी क्षुब्ध समुद्र से प्रखर लहराने लगे—"घर में कोई हथियार है?"

"नहीं उस्ताद, सँभलकर शागिर्द ने जवाब दिया।

"अफ़सोस है! इतने बड़े कलाकार के घर में एक छुरा तक नहीं। जिससे वह अपनी बेइज़्ज़ती करनेवाले की छाती छलनी कर सके! रहीम! फ़ीरोज़ी मेरी नहीं—मैं तो हमेशा

का ना-औलाद हूँ खुदा की बेटी थी। हैरत न कर सुनकर बेटे! उसको तो मैंने रसूलपुर के बाहर पड़ी हुई पाया था। रहमी से, खुदा के डर से, मैंने उसे पाल लिया था। और, पंद्रह साल तक मैं उसका अब्बा—आह! मीठा सुरीला 'अब्बा' रहा! रहीम ..!"

"हुजूर!" उस्ताद को उत्तेजित देख समझ गया बेचारा।

"जा! देख, दौड़ते जइयो! खूँटी पर 'सीरज' के बने वे जो तंबूरे हैं—बड़े बड़े—उठा ला, जोड़े को। दोनों को—खुदा की बेटी के लिये आज मैं इस नाइंसाफ़ राजा का, तंबूरे से सिर तोड़ूँगा।"

अभी रहीम तंबूरे ला ही रहा था कि रंगीनखाँ के सवारों ने घेर लिया उस्ताद का घर, और उनको भी!

उस्ताद को सभी चाहते थे, और वे सवार भी 'रसूलपुरी' वीणाकार से नावाक़िफ़ न थे। इसीलिये किसी ने उन पर हाथ उठाने या बदज़बान बोलने की, बेहूदगी दिखाने की कोशिश न की। फिर भी उस्ताद और रहीम—एक गैबी जोश से भरे दोनों—सीरज के बने तगड़े तंबूरों से राजा के सवारों को पीट चले।

ख़ुदा की बेटी

उस्ताद गुलाबख़ाँ फ़ीरोज़ी को बेटी से बढ़कर मानते थे, क्योंकि उनके कोई औलाद न थी। और, बिना बच्चे का घर उन्हें ऐसा लगता था, जैसे एक तार से कम सितार। फिर चाहे वह तार छोटे-से-छोटा ही क्यों न हो।

जब सवारों के पहरे में, पगड़ी से बँधे, एक तेज़ ताँगे पर उस्ताद और शागिर्द धर्मपुर ले जाए जा रहे थे, तब सारी राह उस्ताद फ़ीरोज़ी ही के बारे में सोचते रहे। बीवी के विसाल की बात उनके ख़याल में भी न आई। सिनेमा की तसवीरों की तरह पंद्रह वर्ष की घटनाएँ उस्ताद के दिमाग़ी सिनेमा-घर में, भावों के सफ़ेद पर्दे पर, दौड़ने लगीं —

"एक दिन, पंद्रह वर्ष पहले की बात है, पौ फूटने के पहले ही गुलाबख़ाँ हाथ में वीणा लिए किसी बुज़ुर्ग की मज़ार की तरफ़ जा रहे थे।

"राह में उन्हें दोशाले में लपेटा एक बच्चा मिला, जिसे गोद में सँभाल उन्होंने ख़ुदा का शुक्र मनाया, और लाकर पाल लिया। बड़े प्रेम से उन्होंने उसको अपनी बेटी विघोषित किया, और लाड़ का नाम रक्खा 'फ़ीरोज़ी'—क्योंकि लड़की की आँखें फ़ीरोज़े—नील नलिन-सी थीं।

'ज्यों-ज्यों वह लड़की बढ़ने लगी, त्यों-त्यों गुलाबख़ाँ की इज़्ज़त, शुहरत, दौलत भी बढ़ने लगी। पंद्रह बरस में गुलाबख़ाँ को जो मर्तबा हासिल हुआ, वह साठ-साठ साल से खटनेवाले भी न पा सके! गुलाबख़ाँ अपनी कला के कारण संगीत-रत्न, और देश-रत्न-से विख्यात हो गए। ज़रूर इसके साथ उनका कला-पूर्ण हृदय और साधना भी थी घोर, मगर उस्ताद ने अपनी तरक़्क़ी का सबब उस राह-मिली लड़की ही को माना।

'उस्ताद उस लड़की को बहुत चाहते थे—बहुत! वे घंटे-घंटे-भर उसकी बड़ी-बड़ी आसमानी आँखों में जीवन का न-जाने कौन राज़ देखा, समझा और कुछ पूजा-सी उसकी किया करते थे।

"उस्ताद ने उसको बजाना सिखाया सितार—गाना सिखाया शुद्ध मलार। ऐसा—ऐसा कि प्रकृति में स्वरों से कोलाहल पैदा हो जाय। उस्ताद ने फ़ीरोज़ी को बचपन ही से नाचना भी सिखाया—दक्षिणी, मालाबारी, उड़िया, कत्थकी और विलायती वग़ैरा-वग़ैरा सभी तरह की नर्तन-प्रणालियाँ।

"क्यों आख़िर? क्या उस्ताद फ़ीरोज़ी से नाचने का 'पेशा' कराना चाहते थे? तौबा! ऐसा ख़्वाब में भी उस मर्देख़ुदा का इरादा नहीं था। गुलाबख़ाँ का तर्क यह था—फ़ीरोज़ी को गुणवती बनाने में कि गुणी हर हालत में निर्गुणी से अपनी हिफ़ाज़त बेहतर कर सकता है। लड़का हो या लड़की—बेवक़ूफ़

होने से उसका बदमाश होना बेहतर है। बेवक़ूफ़ों या बदमाशों की इस दुनिया में गुलछर्रे हैं बदमाशों के लिये, और ठोकरें हैं बेवक़ूफ़ों की ख़ातिर।

"असल में सयानी होते ही जल्द ही उस्ताद उसे किसी को सौंप देना चाहते थे। किसको—किसी रईस को ? छिः! उस्ताद ने इरादा किया था कि वह फ़ीरोज़ी की शादी किसी अच्छे फ़क़ीर से करेंगे, क्योंकि ख़ुदा की बेटी फ़क़ीर ही को देना मुनासिब होगा।

"मगर क्या किसी भिखारी के पल्ले में उस्ताद फ़ीरोज़ी को बाँधना चाहते थे ? उहूँक! उस्ताद तलाश में थे किसी पढ़े-लिखे जानकार और हरदिल अजीज फ़क़ीर की।

"और, फ़ीरोज़ी आसमानी चाँद-सी बढ़ती गई, मगर (दूज के चाँद-से) अच्छे फ़क़ीर कम नजर आए, और जो मिले भी, वे औरत को 'मुसीबत' नाम से याद करनेवाले!

"उस्ताद चाहते थे कि कोई अच्छा फ़क़ीर मिले जो फ़ीरोज़ी को अपनाकर उन्हीं के साथ रसूलपुर में रह जाय। उस्ताद फ़ीरोज़ी को चखपूतरी-सी चाहते थे। उसको ब्याह-कर दूर-देश भेज देने का ख़याल भावुक कलावंत के मन में आता ही न था। एक नहीं, सौ फ़क़ीरों को उस्ताद खिला पहना सकते थे, बशर्ते कि बरकतों-भरी वह आसमानी लड़की उनके सामने रहे।

"उस्ताद ने पंद्रह बरस तक फूल की छड़ी से भी उस लड़की

को मारे आदर के कभी नहीं छुआ। असल बात यह है कि शुरू से आज तक उस्ताद ने उस लड़की में प्रेम को छोड़ और कुछ देखा नहीं—पाया नहीं। उसके किसी भी काम से उस्ताद के मन में रोष नहीं होता था। उसके किसी भी काम से उस्ताद उत्साहित होते थे। कई बार उस्ताद ने जब विचार किया, तो पता चला कि 'दबा' चाहे उनकी छूट जाय, मगर फ़ीरोज़ी को वह नहीं छोड़ सकते थे।

"और, अब वही फ़ीरोज़ी उस्ताद से छीन ली गई, जैसे किसी की आँखें छीन ली जायँ। उस्ताद कभी यह सोच भी नहीं सकते थे कि रक्षक ही भक्षक बन जायगा। राजा यहाँ तक पागल हो जायगा।

"फिर भी उस्ताद में हिम्मत थी। फ़ीरोज़ी का प्रेम ही ज़बरदस्त हिम्मत की तरह उस्ताद की नसों में दौड़ने लगा। उन्होंने बँधे और गिरफ़्तार होने पर भी धर्मपुर राज्य को तहस-नहस कर डालने के लिये पूरा बल अपनी भुजाओं में महसूस किया।

"धर्मपुर में घुसते ही उस्ताद गुलाबख़ाँ के मन में शहीद होने की ख्वाहिश होने लगी। किसके लिये—खुदा के? नहीं। खुदा की बेटी के लिये।"

समय

जिस बड़े खंबेदार 'हाल' में कुछ घंटे पहले संगीतोत्सव मनाया जा रहा था, उसी में महाराज मदनसिंह, दीवान रंगीनखाँ और राज्य के कई ऊँचे अधिकारी इकट्ठे थे। महाराज के चेहरे से रोष साफ़ झलक रहा था। अन्य लोग सन्नाटे में थे।

"पहले सिद्दीक़ को पेश करो।" रंगीनखाँ ने गंभीरता से कहा, और क्षण-भर बाद सिपाहियों से घिरा सिद्दीक़ राजा के सामने हाज़िर किया गया।

"सारे रुपए इसके पास हैं?" रंगीनखाँ ने सिपाहियों के हवलदार से पूछा।

"पूरे हुज़ूर एक हज़ार एक और चाँदी की तश्तरी।"

"उस बेवा को हाज़िर करो" और, तुरंत ही वह बेवा भी पेश की गई, जिसके दुख से पिघलकर उस्ताद ने उसको एक हज़ार नक़द दे दिया था। बूढ़ी डरी हुई थी।

"दोहाई है सरकार की!" वह चिल्लाई आते ही—"ये रुपए हैं, अभी एक भी खर्च नहीं हुआ है। मैं नहीं जानती थी कि वह मुआ चोर था।"

"भिखारियों को फ़ौरन...।"

हुक्म होते ही सैकड़ों भिखारी नए-नए कपड़े पहने और हाथ में फल-फूल या खाने की दीगर चीज़ें लिए राजा के सामने लाए गए। वे भी परम भयभीत थे, और दोहाई खींच रहे थे—"दोहाई राजा की! हम नहीं जानते थे कि वह आदमी सरकारी रुपया 'उड़ाकर' खैरात कर रहा था। इसमें हमारा कोई भी क़ुसूर नहीं है...मिठाई, कपड़े, रुपए—दस-दस—सभी हमारे पास हैं। ले लीजिए, और उस चोर के गुनाह के लिये हमें फाँसी न दीजिए।"

"दोहाई! दोहाई!!"

"फ़क़ीर को हाज़िर करो।"

"रसूलपुरी बीनकार हाज़िर है।" फ़क़ीर की पेशी के पहले ही उस्ताद के आने की ख़बर राजा को मिली। उस्ताद का सामना, क्या जाने क्यों, राजा ने करना न चाहा। वह उठे—

"वज़ीर साहब!" झुककर दाँत दिखाते रंगीनख़ाँ से उन्होंने कहा—"उस्ताद—गुस्ताख़ गुलाबख़ाँ—को मुनासिब सज़ा तुम्हीं दे दो।"

फिर भी रंगीनख़ाँ के कान के पास राजा ने धीरे से कहा—"कड़ी सज़ा दोगे, तो वह संदरा कुढ़ेगी—डरा-धमकाकर छोड़ दो, मगर समझाकर मज़े में कि लड़की का नाम लेते ही उसकी जान की ख़ैर नहीं, वह राज़ी न हो, तो जेल दो उसको—राज़ी हो जाय, तो दस हज़ार रुपए और दे दो। गुणी है, साथ ही लड़की निहायत हसीन है—है न?"

"वह बेहोश न हो गई होती, तो अब तक हुजूर ने ख़ुद ही देख-जान लिया होता।"

"जो हो, मैं सारी रात का जगा हूँ, गुलाबख़ाँ से तुम्हीं निबटो। मैं चला।"

"रियासत की बहबूदी और हुजूर की भलाई के लिये मैं सब कुछ करूँगा।"

"गुलाबख़ाँ को हाज़िर करो।" राजा के जाते ही रंगीनख़ाँ ने उस्ताद को बुलवाया।

उस्ताद के अंदर दाख़िल होते ही मियाँ सिद्दीक़ बिगड़े—"लानत है तुम पर मियाँ। किसी का दोस्त बनकर गला काटना ही क्या तुम्हारा पेशा है?"

उस्ताद ने सिद्दीक़ की तरफ़ ग़ुस्सा नहीं, रहम से देखा—वह कुछ बोले नहीं। तब तक तो वह बेवा तड़प उठी। लगी चमका-चमकाकर उनको बद्दुआएँ देने—तुझे शैतान ग़ारत करे। तेरे घर में मलेकुलमौत का डेरा पड़े। मुए, पाजी! चोरी के रुपए ख़ैरात करने चला था?"

"चोर है! चंडाल है!! पापी है!!!" भिखारियों का झुंड भी उबल पड़ा।

"क्या है तुम्हारा नाम?"

रंगीनख़ाँ ने अफ़सराना ढंग से सवाल किया, जिससे गुलाबख़ाँ तेज़-मिज़ाज चिढ़ गए। चिढ़े तो वह थे ही, अब और भी उबल उठे; मगर न-जाने क्यों चुप रह गए।

"क्या है तेरा नाम ?" निहायत बेहूदे ढंग से रंगीनखाँ ने फिर पूछा, और अब उस्ताद चुप न रह सके।

"मेरा नाम राजा मदनसिंह से पूछो—कहाँ है राजा—मैं राजा से बोलूँगा।"

"हुजूर आराम में हैं, और तेरी क़िस्मत का फ़ैसला मेरी मर्ज़ी पर है—इस वक़्त तेरा ख़ुदा....।"

"ख़ामोश !" बहुत तेज़ स्वर में डाटा उस्ताद ने—"मुसलमान होकर कुफ़्र न बको—नहीं तो, नहीं तो....!"

उस्ताद रंगीनखाँ को गाली देते-देते चुप रह गए, ऐसा बज़ीर ने भी नफ़रत और रुख़े से महसूस किया।

'मुसलमान' और 'ख़ुदा' पर उस्ताद के जोर देने से रंगीनखाँ भी ज़रा सुस्त पड़ा, मगर रुका नहीं तो भी—"तूने हमारे महाराज का अपमान किया।"

"राजा कहाँ है, मैं राजा से बातें करनेवाला हूँ—मामूली हुक्कामों से नहीं।"

"अदब !" हवलदार ने डाँटा उस्ताद को—उस्ताद !

"आप धर्मपुर की रियासत के चीफ़ प्राइवेट सेक्रेटरी से बातें कर रहे हैं।"

"ठाकुर !" क्षत्रिय हवलदार को जवाब दिया उस्ताद ने—"यह कोई हो—आदमी बदज़ात और बदतमीज़ है। किसी समझदार आदमी से फ़िज़ूल ही नू-नड़ाफ़ करने में इसको शर्म नहीं !"

"मारो! मारो—हवलदार! उस्ताद की बातों से उछलकर उन पर टूटता हुआ रंगीनखाँ चिल्लाया—यह बदमाश राजा के बाद मुझे भी गालियाँ दे रहा है। मारो!"

मुमकिन था कि इस मौक़े पर उस्ताद का अपमान हद तक पहुँच जाता, अगर उसी वक्त, राजा मदनसिंह एकाएक न आ पड़ते।

राजा के आते ही एक बार सन्नाटा छा गया।

"क्या है? है क्या उस्ताद?" महाराज नाख़ुश होने पर भी गुलाबख़ाँ से रुखाई न दिखा सके—"आपकी इतनी शिकायतें—इतनी शिकायतें...."

"और तेरी!" चमककर उस्ताद ने कहा—"मैं आज माफ़ी न चाहूँगा और न माफ़ करूँगा ही। मैं तुझको—तुझको 'तू' कहूँगा—तुफ़् है! तू राजा है! मैं तेरे बाप का दोस्त—मैं तुझे गोद में खिलानेवाला जईफ़ कलावंत, और शैतान! तू मेरी ही बेटी पर—राजा! राजा! सुन—कौन बोल रहा है? अब तेरा आख़ीर क़रीब है। फ़ीरोज़ी—याद रख, मेरी नहीं, ख़ुदा की बेटी है। उसको छुआ कि तू दोज़ख़—नरक—राजा सच मान! नरक में तू जायगा—और उस नरक में—जहाँ ताप है, ज्वाला है, विषैला धुआँ है—लेहज़ा-लेहज़ा पर मौत है—फिर भी मौत नहीं है, माफ़ी नहीं है!"

अपमान, आवेश और आक्रोश से पागल, बेहोश, मूर्च्छित हो उसी 'हाल' में बड़ी गुलाबख़ाँ धड़ाम से गिर पड़े।

उसी 'हाल' में हाँ, जहाँ ज़रा ही पहले वही उस्ताद गुलाबख़ाँ वाहवाहियों के साथ हज़ारों से पूजे गए थे !

रंगीनख़ाँ ने सलाह दी—"इसे गोली मार दी जाय—जान से मरवा डाला जाय !"

"नहीं वज़ीर साहब ! महाराज ने कहा—"इसे पागलख़ाने भेज दिया जाय। पांच साल के लिये इसे बंद कर दिया जाय।"

"ऐसा ही होगा।"

और, हुआ भी ऐसा ही।

संगीत और सौंदर्य

बेहोशी दूर होने पर फ़ीरोज़ी ने अपने को एक मारबली महल में, बड़े कमरे में, बेशक़ीमती पलंग पर, क़ीमती ओढ़ने के अंदर पाया। क्षण-भर तो वह हैरान रही, और अपनी आसमानी आँखों को फैला-फैलाकर आसमान की तरफ़ देखती रही—छत की तरफ़।

अब उसकी चेतना लौटने लगी। वह सोचने लगी कि वह कौन—? फ़ीरोज़ी रसूलपुरवाली है! वह अपने प्यारे अब्बाजी के बावर्चीख़ाने में बैठी अपनी प्यारी अम्माजी से हँस-हँसकर बातें कर रही है। इसी वक़्त शोर मचता है। कई सिपाही अंदर दौड़ते आते हैं—'तू इधर आ बेटी!' कहती अम्मा उन सिपाहियों की जनाने में घुस आने के लिये लानत-मलामत करती है—बात बढ़ती है—एक सिपाही प्यारी अम्माजी को छुरा''आह!

छुरा लगने पर उस्ताद की पत्नी को जो हुआ, उसके अनुभव से फ़ीरोज़ी काँप उठी—उसने आँखें बंद कर लीं कि कहीं अम्माजी मर न जायँ इस क्रूर कांड से।

मगर आँखें बंद होने पर भी स्मरण-लीला होती रही। फ़ीरोज़ी ने महसूस किया, जैसे सिपाही कई उसको पकड़ना

चाहते हैं, और वह कोठरी-कोठरी भागती फिरती है—आखिर पकड़ ही लिया उन्होंने—हाय बेचारी रोने लगी, पुकारने; मगर सिपाही घोड़े पर बाँध उसे उड़ा ले चले—कहाँ ?

कहाँ है वह इस वक्त ? इसका पता चलने ही से उसे अपने भविष्य का पता लगेगा—अंधकार दूर होगा।

पुनः बड़ी-बड़ी आँखें फैलाकर वह जैसे उस कमरे से पूछने लगी कि बोलो, तुम्हारे मालिक का नाम क्या है ?

और कमरे ने उत्तर दिया। उत्तर ओर की दीवार पर एक बड़ी तसवीर ही वह उत्तर था, जिसे देखते ही चमककर फ़ीरोजी पलंग के नीचे आ रही।

"महाराज—धर्मपुर....हाँ, इसी तसवीर की छोटी नक़ल तो हमारे घर पर भी है...तो क्या...राजा..बुरी नजर...मेरी मा....!"

वह घबरा उठी। पहले उसने दरवाजों पर नजर डाली—देखा, कई दरवाजों का मकान था, और सभी खुले हुए थे। फ़ीरोजी ने सावधानी से सभी दरवाजों को बंद किया। वह फिर कमरे की जाँच करने लगी....सारे सामान शाही! मोटा, नरम ग़लीचा, सुनहरी-रुपहरी कुरसियाँ और मेजें—गंगा-जमुनी तश्तरियों में विविध पाक और फल-फूल....बड़े अलमारी में पहनने के सुंदर-से-सुंदर जनाने—और फ़ीरोजी के बदन के—कपड़े....!

मगर इन चीजों को तो वह नहीं खोज रही थी। जरा भी

दिलचस्पी उसने न ली ऊपर लिखी चीज़ों में, और जो ढूँढ़ती थी—एक छुरा!—उसे न पा वह घबरा उठी—"अब्बाजी!" चिल्लाई वह—'कहाँ हो? मेरी इज्ज़त बचाओ!"

रोती हुई अभागिनी लड़की ने आसमान की तरफ़ मिन्नत से हाथ उठाकर देखा, और देखा पश्चिम की दीवार पर टँगा एक रत्न-जटित बड़ा सितार—निहायत सुंदरता से सँवारा हुआ साज़। फ़ीरोज़ी सितार को देखते ही मारे ख़ुशी के फूल उठी। झपटकर उसने साज़ को उतारा। तार पूरे थे। अरसे तक काम में न आने से उनमें ज़ंग लग रही थी। फ़ीरोज़ी ने सिर के तेल से तारों को साफ़ कर सूखे कपड़े से पोंछकर सितार को सुर में मिलाया।

अब उसका भय जाता रहा। उसने सभी दरवाज़े खोल दिए, और वह उचित आसन से बैठकर लगी यंत्र को बजाने।

वह लगी बजाने—'मालकोस' वह लगी बजाने सा....ग.... म....ध....नी आदि स्वरों का वह देवराग, जिसे किसी स्वर्गिक मुहूर्त में महामाता पार्वती ने गाया था। मालकोस राग मर्दाने बाने का माना जाता है, और 'चीं मीं' गानेवाली छोकरियाँ उसे नहीं गा सकतीं। मालकोस को सुर में लीन होकर लय से कोई उस्ताद ही गा सकता है।

वही मालकोस फ़ीरोज़ी सितार पर खेलने लगी... गमक—मींड़—मूर्छनामयी झंकारें फौवारे की धारों सी सितार से

निकल-निकल; उड़-उड़कर चारों ओर मालकोस का हृदय-गद्‌गदक संदेश देने लगीं।

"हुजूर! धर्मावतार!" एक दासी ने दौड़कर राजा मदनसिंह को संदेश दिया—"वह होश में आ गई, और...और...."

"और क्या? बोलती क्यों नहीं?"

"वह—खता माफ हुजूर!—बिना हमसे पूछे ही वह कर रही है।"

"क्या कर रही है? साफ बोल!"

"सरकार! वह सितार—बड़ा पूजावाला सितार उतारकर बजा रही है।"

"बीनकार की बेटी सितार बजाती है! ठीक है—समझा—तू जा! मैं अभी आता हूँ।"

गो कि तीसरे पहर का वक्त था, मगर सितार और सुंदरी को देखने के पहले महाराज ने सुरा-संदेश सुनाना चाहा। मजे में पीकर वह चले।

महाराज ने दूर ही से सुना—म....ध....नी....स....और, पुराने कला प्रेमी मदनसिंहजी समझ गए कि राग मालकोस फीरोजी ने छेड़ा है। वाह! मन-ही-मन उन्होंने सोचा—कैसे सच्चे सुर निकल रहे हैं—वाह! औरत तो अप्सरा है—अप्सरा!

फीरोजी के सामने आने पर भूल गए महाराज कि उनका उद्देश्य क्या था। वह तो सुर में बँधे; हाथ बाँधकर उसके सामने खड़े हो गए।

सितार-पाणिनी फ़ीरोज़ी साक्षात् शारदा की मूर्ति मालूम पड़ती थी, और महाराज मदनसिंह भक्त की तरह।

राजमहल की दीवारों से मानो फूट-फूटकर 'मध्यम' और 'निषाद'—म, नी—निकल रहे थे।

मालकोस राग में मध्यम और निषाद कितने मधुर, कितने आकर्षक, कितने दार्शनिक होते हैं।

नशा उतर जाने पर भी महाराज मदनसिंह घंटों तक फ़ीरोज़ी की उँगलियों से निकले उस मालकोस से मस्त रहे! पवित्र सुरों की धार से उनके मन की अपवित्रता एक बार धुल गई—स्वच्छ!

पड़ोसी

"मदनसिंह को गद्दी से उतारे बिना मुझे चैन नहीं।"

"घबराएँ नहीं हुजूर! जब आपने पूरी मदद से मुझे यह काम सौंपा है, तो बेफ़िक्र रहिए।"

"तुम्हारा जादू उस पर चल सकेगा? मदनसिंह को मुट्ठी में तुम कर सकोगे?"

"कर सकोगे नहीं, कर लिया। चार ही दिनों से तो मैंने ऑफ़िस सँभाला है, और इसी मुख्तसिर वक़्त में सब कुछ मैंने कर लिया।"

"याने?"

"याने क्या; हुजूर! महाराज मदनसिंह यह समझ गए अच्छी तरह कि मुझ-सा चालाक, क़ानूनी पंडित, अँगरेज़ों में घुसा और ऐशों को समझनेवाला दूसरा नहीं।"

"सुबूत?"

"अ···ह! हुजूर फ़िज़ूल ही आप मन में शक लाते हैं। सुबूत एक ही नहीं, सैकड़ों हैं। मेरे कहने से उन्होंने एक इज्ज़तदार मुसलमान की लड़की को पकड़ मँगाया है। मेरे ही कहने से उस मुसलमान को उन्होंने पागलख़ाने भी भेज दिया है। मेरे ही····"

"वाह ! मगर तुमने अपने ही क़ौमवाले को पहला शिकार क्यों बनाया ख़ाँ साहब ! क्या इसमें भी कोई भेद है ?"

"ज़रूर । बिना भेद के बंदा जुंबिश भी नहीं करता। अब हम रियासत के मुसलमानों को भड़काएँगे ।"

"वाह ! ख़ूब !! बेशक ख़ाँ साहब ! विलायतों में कूटनीति सीखकर आप पूरे 'बिस्मार्क' बन गए हैं !"

"हुज़ूर की नवाज़िश, वर्ना बंदा किस क़ाबिल है ।"

"मगर जल्द ही मदनसिंह का सत्यानास हो जाय, तो बेहतर ।"

"हुज़ूर का काम करने के लिये हज़ार-हज़ार तरकीबें मैंने सोच रक्खी हैं, और मैं उन पर अमल भी कर रहा हूँ। सालगिरह के जलसे में आई सभी तवायफ़ों को मैंने रोक लिया है। उन्हें शिकार पर ले चलेंगे ।"

"क्यों ? अम्याँ ख़ाँ साहब ! रंडियाँ शिकार खेलेंगी, तो क्या हम लोग मजलिस में नाचा करेंगे !"

"मैंने मदनसिंहजी को यूँ समझाया है कि यह एक देखने की बात होगी, और बिलकुल नई । जब साज़िंदे और भड़ुए और नायिकाएँ पहाड़ी दर्रे में दौड़ेंगी शिकार के लिये, तब वह ज़नाना-मंडल का एक विचित्र नज़्ज़ारा पेश करेगा ।"

"तब तो ठीक, मैं भी शिकार में चलूँगा, नवाब भी, मगर इसमें क्या 'तरकीब' है तुम्हारी—ज़रा मैं भी सुनूँ ।"

"सीधी-सी तो बात है। शिकार में धरमपुर की पहाड़ियों से अगर एक भी जानवर झपटा, तो दो-चार जानें जरूर जायँगी। जिसकी सूचना से रेजिडेंट महोदय—जो हमेशा अप्रसन्न रहते हैं महाराज से—जरूर भड़केंगे।"

"शाबाश! खाँ साहब, धर्मपुर का नाश होते ही मैं आपको अपना वजीरे आजम बनाऊँगा—बस, किसी तरह महाराज को रेजिडेंट से भिड़ा दो।"

"हुजूर जानते ही हैं, रेजिडेंट साहब मुझे बहुत मानते हैं।"

"क्योंकि, तुम सात घाट के पानी पीनेवाले हो। 'मिले'.... किस तरह वह दोहा है, जिसमें पानी से पानी और कीच-से-कीच मिलने की कहानी है?"

"दोहा हुजूर मुझे याद नहीं—हाँ, दिल से दिल की राहत होती है। मैं और रेजिडेंट साहब कई बातों में हम-खयाल हैं। मैं 'मजहब' को नहीं मानता, और 'मतलब' को मजहब से बड़ा मानता हूँ। यही राय रेजीडेंट साहब की भी है। मैं कमजोर अमीरों के हाथ से उनकी रियासतों को छीन लेने का हामी हूँ। ठीक यही राय रेजिडेंट की भी है। धरमपुर में रहते हुए और तनख्वाह खाते हम 'दोनो ही' महाराज मदनसिंह के बदख्वाह हैं।"

"झूठ! रेजिडेंट साहब बदख्वाह नहीं, मुंसिफ-मिजाज हैं। जानते हैं कि यह मदनसिंह कौड़ी काम का आदमी नहीं है।"

"भारी 'डिप्लोमेट' आदमी है यह रेजिडेंट भारी पंडित!

इसकी अपनी राय तो यहाँ तक है कि अब एक भी राजा भारत में न रहे, और नक़्शे में चारों ओर एक ही 'लाल' रंग नज़र आए।"

"पागल है! खाँ साहब, जिस दिन हम छोटे मोटे राजा न रह जायँगे उस रोज़...."

"दुरुस्त है हुज़ूर! आपकी और ख़ादिम की राय इस मसले पर बिलकुल एक है। साम्राज्य के लिये, उसकी बहबूदी के लिये, उसके 'प्रोग्राम' को अमन से चलते रखने के लिये देशी रियासतें वैसी ही ज़रूरी हैं...."

"जैसे तेज़ा कुल्हाड़ी के लिये लकड़ी का डंडा।"

"बजा है! बिलकुल एक राय है हुज़ूर और ख़ादिम की इस अहम मसले पर। काठ ही की मदद से काठ कटता है।"

"और खाँ साहब! मदनसिंह ने मिस डार्लिंग के सिल-सिले में बेरुख़ी दिखाकर मेरा घोर अपमान किया है। आप कुछ ऐसा कीजिए, जिससे रेज़िडेंट की तेज़ ताक़त कुल्हाड़ी बन जाय उसके विरुद्ध—लकड़ी का डंडा मैं बनूँगा। ख़र्चा चाहे जो लगे।"

"बड़े बड़ों में पासा फेंकना है—कई लाख लग सकते हैं।"

"दूँगा—दूँगा खाँ साहब! अपने पड़ोसी के सर्वनाश के लिये मैं प्राण तक दे दूँगा....।"

शिकार

धर्मपुर शहर में तीन कोस उत्तर वह पहाड़ी है, जहाँ अक्सर महाराज या रियासत के अतिथि अथवा रेजिडेंट महोदय शिकार का शौक़ किया करते थे।

पहाड़ी ऊँची कम है, और जंगलों से हरी भरी है। साथ ही खतरनाक जानवर भी तरह-तरह के उसमें पाए जाते हैं। वहीं आज महाराज मदनसिंह, नए सेक्रेटरी की सलाह से, पाँच सौ वेश्याओं और उनके दो हज़ार साजिंदों के साथ शिकार खेलने जा रहे हैं।

पाँच सौ सुनहली पालकियों पर वेश्याएँ चलीं, घोड़ा-गाड़ियों पर साजिंदे और हाथियों पर चले भड़वे—धर्मपुर-राज्य की ऐतिहासिक पहाड़ियों में शिकार खेलने!

विलासवानों का वह दल दूर से पूरी सेना की तरह था—हयदल, पैदल, गजदल, रथदल।

महाराज स्वयं राजा अजबगढ़ और नवाब आक़िलाबाद के साथ एक इटैलियन शिकारी मोटर गाड़ी में आ रहे थे।

"शिकार में तवायफ़ें और क़सबी! कमाल किया आपने राजा साहब!" मजाक़न् नवाब साहब ने कहा।

"यह सारा जस हमारे नए सेक्रेटरी मियाँ रंगीनख़ाँ का

है—खूब सोचता है यार!" महाराज मदनसिंह ने नवाब साहब को बतलाया।

"इस शख्स को।" राजा अजबगढ़ बोले - 'मैं अपना वजीरे-आजम मुक़र्रर कर दूँगा, अगर भाई साहब इसे छोड़ दें।"

"ऐसा होशियार आदमी रोज नहीं मिलता। राजा साहब! हमारा-आपका कुछ बँटा तो है नहीं, ज़रा मेरी रियासत सँभाल लेने दीजिए। मगर मज़ा रहेगा शिकार में! देखिएगा सेक्रेटरी की 'जीनियस" जब यह नचनियों का क़ाफ़िला शेरों को ललकारेगा।"

"बेशक! राजा साहब!" नवाब साहब ने दाद दी—"ऐसा ऐश तो शायद वाजिदअली शाह ने भी नहीं किया होगा। सुभान अल्लाह! तीन हज़ार जानों का जुलूस!"

जुलूस पहाड़ियों में पहुँचा, और दर्रे के मुहाने तक भी। अब शिकार को भगाकर शिकारियों के सामने लानेवाले एक ओर तेज़ी से पहाड़ियों में फैल गए, और दूसरी ओर हरएक औरत के हाथ में एक-एक बंदूक़ दी गई, और प्रत्येक साजिंदे को एक तलवार। भडुवों को बर्छे पकड़ाए गए।

महाराज ने आज्ञा दी—"दौड़ो सब, खोजो और मारो शिकार! औरत को दस हज़ार, और मर्द को हज़ारों इनाम मिलेंगे, बशर्ते कि कोई एक शिकार मारे।"

सारीजिंदगी बंदूक़ के नाम से भी डरनेवाले शेर के शिकार को दौड़ा दिए गए! दौड़े बेचारे राजदंड के भय से!

'पतरी कमरियाँ' दौड़ी ? 'तिरछी नज़रिया' दौड़ी। दाढ़ी-फटकार उस्तादजी सितारिया दौड़े और मूँछ-मरोड़ मास्टर तबलची भी दौड़े। दौड़े असल में तीन हज़ार बुज़दिल शेरों के शिकार को।

महाराज और नवाब आक़िलाबाद तथा महाराज अजबगढ़ एक साथ ही ऊँचे मकान पर सशस्त्र खड़े रंगीनखाँ की प्रतिभा की प्रशंसा फिर-फिर, हँसते-हँसते करने लगे।

जब जब – मेरी मा ! मैं तो मर गई ! कहकर कोई खूबसूरत नर्तकी पत्थरों पर फिसल गिरती, तब-तब मचान पर से मेहमान श्रीमान् धर्मपुर-नरेश तालियाँ बजा-बजाकर, उछल-उछलकर हँसते –हँसते और हँसते।

इतने ही में तो शेर तड़पा—गर्जा बादल कुमार-सा। मालूम पड़ा, हाँकनेवालों ने बहकाया—वन-पशुओं को। नहीं, शेर ही बोला रहा है, ऐसा साफ़ मालूम पड़ा।

महाराज ने मचान पर बंदूक़ सँभाली—नवाब और राजा अजबगढ़ भी सावधान हो उठे।

उधर भगे तबलिए जान छोड़कर, जिधर सींग समाया, उधर ही ! साथ ही भागे सरंगिए, भडुवे और उनके सहयोगी।

बेचारी सुकुमार परियों का झुंड तो ऐसे भागा, जैसे सिंह की सूचना से मृगियों की मंडली।

पाँच सौ में से प्रायः आधी बेहोश हो गईं। जो होश में रहीं, उन्हें मालूम हुआ कि उनका भय झूठा था। शेर नहीं

बोल रहा था, बल्कि मराराज का मुँह-लगा विदूषक दूर से शेर की आवाज़ की नक़ल कर रहा था।

प्रसन्न हो महाराज ने विदूषक की प्रशंसा की। उसे एक हज़ार की तश्तरी उपहार मिली। अब राजाज्ञा से शिकार-लीला बंद की गई, और साथ आए सरदारों को हुक्म हुआ कि बेहोश परियों को गोद में उठा-उठा वे घाटी में किसी अच्छी जगह इकट्ठे हों।

होश में आते ही सभी भूख-प्यास से पागल मालूम पड़ीं। शिकार-नाटक में कोई चार घंटे धूप में बेचारियों को रगड़े खाने पड़े थे।

"मगर खाना तो साथ में कुछ भी नहीं है!" महाराज ने पाँच सौ परियों और उनके पार्श्व-रक्षकों को सुनाया—"वज़ीर की ग़लती से हम कुछ भी न ला सके। हाँ, सामान हमारे साथ है—घी, आटा, चावल मसाला सब कुछ। मेरी राय है, सुंदरियों! तुम अलग-अलग आज खाना बनाओ। ज़रा देखूँ मैं—कौन तुममें सबसे लज़ीज़ है!"

लाचार थकी-माँदी बेचारियाँ लगीं खाना पकाने। उन्हें बर्तन मिले, सामान और सहायक भी। और, महाराज मदन-सिंह के मनोविनोद के लिये पाँच सौ चूल्हे चेते। पाँच सौ हाँडियाँ चढ़ीं। पाँच सौ पकवान पके।

जब सबने अपनी-अपनी चीज़ें तैयार कर ली, तब महाराज मदनसिंह वज़ीरों से घिरे उनमें पधारे।

"आ हा !" एक परी से उन्होंने कहा—"मुन्नीजान ! आपने खिचड़ी पकाई है—सुभान अल्लाह ! ज़रा मैं भी चखूँ ?"

सोने की तश्तरी में सोने के चम्मच से मुन्नीजान ने महाराज को खिचड़ी दी—उन्होंने चखी।

"अहा, कितनी लज़ीज़ ! कमाल है मुन्नीजान !"

राजा चुन्नीजान के सामने गए, और वज़ीर ने मुन्नीजान के सामने हज़ार की तश्तरी रक्खी।

राजा हरएक वेश्या के सामने गए सबका 'नमक' चखा, और सबके सामने हज़ारी चमकीली तश्तरियाँ आईं !

जितने रुपए धर्मपुर-राज्य के सर्फ हुए उस शिकार में, उनकी संख्या यदि बताई जाय, तो सुननेवाला कहनेवाले को झूठा कहना चाहेगा।

फिर भी रंगीनख़ाँ का मक़सद पूरा न हुआ, कोई न तो मरा और न घायल ही हुआ।

रहीम

राजा मदनसिंह ने केवल उस्ताद गुलाबखाँ को पागलखाने भेजा था। रहीम पर न तो महाराज की नज़र पड़ी, और न रंगीनखाँ वज़ीर की। जब उस्ताद को उठाकर लोग ले जाने लगे, तब वह चिल्लाया, और तभी वज़ीर ने उसके बारे में दरियाफ़्त किया। यह मालूम होने पर कि वह गुलाबखाँ का शागिर्द और मुसलमान है, रंगीनखाँ ने सिपाहियों से कहा — "इस लौंडे को मेरे बँगले पर पहुँचाओ।"

बँगले पर पहले तो रंगीनखाँ ने रहीम को खिला पिलाकर फुसलाना चाहा, मगर वह छोकरा ज़ोर-ज़ोर बेइख़्तियार रोता ही रहा अपने रहमदिल उस्तादजी के लिये।

"देख !" रंगीनखाँ ने समझाया उसे—"अगर तू मेरी बात मान ले, तो मैं तुझे रसूलपुर में एक नया मकान बनवा दूँगा। बस, तू एक काम कर। जाकर सारे रसूलपुर में मुसलमानों को भड़का कि हिंदू राजा ने बरबस एक मुसलमान लड़की को महलों में रोक रक्खा है, और उस्ताद को पागल-खाने भेज दिया है।"

"मगर यह तो झूठ है।" रहीम ने कहा—"उस्ताद की मुसीबतों को तो आप ही ने बढ़ाया है।"

"तू नहीं समझता। मैं तो राजा का नौकर-भर हूँ। जैसा हुक्म सुनता हूँ, बजा लाता हूँ। मेरी बात मान, यह मज़हब की बात है। एक बार रसूलपुर के ईमानदार मुसलमान भड़के कि सारा काम फ़तह हुआ। तू मुँह माँगा इनाम पाएगा।"

"किसलिये ?"

"बलवा कराने के लिये। रसूलपुर के मुसलमानों को समझा दे कि बलबा वज़ीर भी चाहता है और साहब भी।"

"साहब कौन ? मैं नहीं समझा।"

"इन सारी ख़ुराफ़ातों को समझकर तू क्या करेगा। बस, बात मान ले, नहीं तो मारे हंटरों के तेरी खाल उधेड़ दूँगा।"

जब रहीम ने देखा कि बिना रंगीनख़ाँ के मन की किए जान न बचेगी, तब लाचार हो उसने मंज़ूर कर लिया।

फिर तो वज़ीर ने उसके साथ एक ताँगा दिया, दो आदमी। कुछ रुपए भी वज़ीर ने रहीम को दिए।

मगर रहीम वज़ीर के आदमियों के साथ रसूलपुर नहीं गया। आधी राह से चकमा दे कहीं भाग गया।

वह भागकर उस्ताद के एक-एक शागिर्द के पास गया। और, शागिर्द अनेक थे—रईस, मजूरे, हिंदू-मुसलमान और हर श्रेणी के लोग।

ख़बर मिलते ही कोई पाँच सौ आदमी रहीम के साथ उस्ताद के घर आए। पहले सबने उस्तादिन का क़फ़न दफ़न किया। फिर यह सलाह करने लगे कि कैसे छुड़ाया जा

सकता है उस्ताद गुलाबखाँ को राजा के पागलखाने से।

"मैं चार भाई हूँ।" उस्ताद से मृदंग सीखनेवाले एक राजपूत ने कहा—"मैं उस्ताद को अपना बाप मानता हूँ। अगर किसी से कुछ न होगा, तो हम चारों एक दिन क़ुर्बान हो जायँगे उस्ताद पर। टूट पड़ेंगे पागलखाने के रखवालों पर, और उनको छुड़ाने की कोशिश में जान दे देंगे।"

उस्ताद से सरोद सीखनेवाले तीन मुसलमान जवानों ने ताव से तमककर कहा—"हम आग लगा देंगे धरमपुर रियासत में। मुसलमान की लड़की को उड़ाना हथेली पर बारूद उड़ाना है। बहुत सुन चुके राजा मदनसिंह की ऐयाशियों के क़िस्से, अब उनके मिज़ाज की मरम्मत होने का वक़्त आ गया है। अकेले हम मुसलमान ही उस्ताद को बचा लेंगे, और उनकी दुख्तर को, और उनकी इज्ज़त को भी!"

"मगर नहीं भाई!" उस्ताद से गाना सीखनेवाला एक ब्राह्मण युवक बोला—"यह बेइज्ज़ती केवल मुसलमान ही की नहीं, हिंदू मुसलिम दोनो की है। दोनो बदला लेंगे गुरु-द्रोहियों से। जब हम सभी एक राय हैं इस मसले पर, तब इसको मज़हबी रंग नहीं देना चाहिए।"

"तब क्या होगा?" जोश से मुसलमान शागिर्दों ने पूछा।

"हम लोग एक साथ पागलखाने पर धावा करेंगे। मरेंगे तो हिंदू-मुसलमान दोनो साथ ही, और उस्ताद को बाइज्ज़त बचाकर जीते रहेंगे तो भी साथ ही।"

"दुरुस्त है ! ठीक है ! उस्ताद के लिये हम पागलखाने को तोड़ देंगे ।" मृदंगिया राजपूत गर्जा ।

"मैं तो इस बदमाश राजा को भी सजा देना चाहता हूँ, जो ऐसी बेरहमी से हमारे उस्ताद को तकलीफ़ देता है !" एक मुसलमान ने नाक फुलाकर ज़मीन पर बार-बार थूकते हुए कहा ।

"बड़े मियाँ !" रहीम ने समझाया उस मुसलमान को—"राजा से ज्यादा गुनाह है उसका, जिसे आप लोग न तो जानते हैं, और न पहचानते ।"

"किसका ? हमारे बुजुर्ग, ईमानदार, हुनरमंद उस्ताद को बेइज्ज़त करनेवाला कौन है ? उसका नाम लो !" कई गलों से एक ही स्वर निकला ।

"वह है राजा का नया सेक्रेटरी .."

"उसका नाम लो !"

"रंगीनखाँ !"

"मुसलमान !" एक सरोदिया मुसलमान बिगड़ा—"मुसलमान होकर रंगीनखाँ ऐसा नहीं कर सकता ।"

"रंगीनखाँ मुसलमान नहीं, शैतान है । उसका ईमान है पैसा, और खुदा है धोखा । वह मुझे भड़का रहा था । वह उस्ताद को मारने तक दौड़ा था । रंगीनखाँ मुसलमान हो ही नहीं सकता ।"

"क़सम खुदा की !" दूसरे सरोदिया मुसलमान जवान ने क़स्द किया—"जिसने मेरे उस्ताद पर हाथ उठाने की हिमाक़त की, मैं अपने हाथ से उसकी आँखें निकाल लूँगा !"

पागल

पागलखाने भेजे जाने के पहले उस्ताद गुलाबखाँ मारे आवेश के राजा मदनसिंह के सामने बेहोश हो गए थे, यह हमें मालूम है। इसके बाद महाराज तो महलों में चले गए, और प्राइवेट सेक्रेटरी रंगीनखाँ उस्ताद को पगलखाने भेजने का प्रबंध करने लगा।

कोई पूछ सकता है कि जब भारत के अनेक बड़े शहरों में पागलखाना नहीं, यहाँ तक कि बंगाल के सूबा-भर में कोई पागलखाना नहीं, तब धर्मपुर-राज्य में उसकी संभावना कैसे हो सकती है ?

और, जिन्हें कलकत्ता-जैसे शहर के पागलों का पता होगा, वे तो और भी अविश्वास प्रकट करेंगे धर्मपुर के पागलखाने पर, और कहेंगे कि हूँ-हूँ ! जब कलकत्ता में हरएक सड़क पर दो-चार पागल प्राणी स्त्री या पुरुष, जवान या बूढ़े, विविध रूप-रंगों में मारे-मारे फिरते नजर आते हैं, और कोई समाज या सरकार उनके लिये व्यवस्था नहीं करती, तब भला धर्मपुर में—एक मामूली देसी रियासत में—पागलखाना होगा—छिः ! असंभव !

बेशक, लोगों का वैसा संदेह अकारण न होगा। बेशक,

कलकत्ता-ऐसे ब्रिटिश राज्य के प्रधान नगर में पगली स्त्रियां का मादरजात नंगी घूमना और पागलों का उल्लंग तांडव वर्तमान शासन-व्यवस्था की चमकती बदनामी है, मगर धर्मपुर में पागलखाना भी है बेशक। क्यों ? क्या उस राज्य में बंगाल से ज्यादा पागल होते हैं ?

पागल धर्मपुर-राज्य में अधिक हैं या कम, यह तो हमें मालूम नहीं, हाँ, इतना हम जानते हैं कि वहाँ के पागलखाने में जो लोग भेजे जाते हैं, वे अक्सर राजा ही के हुक्म से। और, राजा का हुक्म सबके लिये प्रायः वैसा ही होता है, जैसा उस्ताद के लिये।

याने धर्मपुर के पागलखाने में ज्यादातर ऐसे ही लोग हैं, जिनकी बहू या बेटी को महाराज के आदमी महलों में उड़ा ले गए, और जिन्होंने रुपयों पर अपनी कुलीनता बेचने से इनकार कर दिया।

होता क्या था पहले कि कोई भी आदमी, जिसकी औरत—लड़की भगाई जाती थी, सीधे रेज़िडेंट के बँगले पर पहुँचकर फ़रियाद लगा देता था, और रोज़ ही रेज़िडेंट साहब सीधी या टेढ़ी राह से महाराज को धमकाते थे। इन्हीं धमकियों से बचने के लिये मुँह लगे मंत्रियों की राय से महाराज ने एक पागलखाना खोला, जिसमें शिकायत करने से पहले ही राजा के विलास का ग़रीब शिकार ठाँस दिया जाता था। पागलख़ाने का ऑफ़िसर कोई आस्ट्रियन गोरा था, जिसकी

औरत से भी महाराज मदनसिंह का संबंध था। उस गोरे का महज इतना ही काम था कि अच्छे आदमियों को वह पागल प्रमाणित करे। जो हो।

उस्ताद गुलाबखाँ बेहोशी ही की हालत में लॉरी पर लादकर पागलखाने भेजे गए थे। वज़ीर रंगीनखाँ ने हवलदार को एक चिट्ठी भी आस्टियन गोरे के नाम दी थी, जिसमें लिखा था कि "इस मरीज की दवा होशियारी से की जाय।" याने उस्ताद को ऐसा पीटा जाय कि मर भी जायँ, तो कोई फ़िक्र नहीं।

लॉरी से उतारे जाकर जब उस्ताद पागलखाने के ऑफ़िस में लाए गए, तब वह बेहोश थे। अब शांत भी उस्ताद बहुत कुछ हो चुके थे, और परिस्थिति पर गंभीरता से ग़ौर कर रहे थे। उन्होंने देखा, और भी तीन नए पागल लाए गए थे, जिनमें एक ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—"मैं पागल नहीं हूँ। हुज़ूर! नया सेक्रेटरी रंगीनखाँ मेरी औरत को भगा ले गया है, और न्याय से बचने के लिये उसने मुझे पागलखाने भेजा है—दोहाई है!"

उसको ज्यादा चिल्लाते देख गोरे आस्टियन ने काले सिपाहियों को ललकारा, और लगी ग़रीब की कुंदी होने। उस्ताद गुलाबखाँ समझ गए इस वाक़या से कि यहाँ फ़िज़ूल है शोरोगुल मचाना।

"गुलाबखाँ।"

साहब के अर्दली ने नए पागल को पेश किया। रंगीनखाँ की

चिट्ठी पढ़ते ही नाक-भौं चढ़ाकर बिगड़ा वह गोरा टूटी-फूटी हिंदी में—"टुम....टुम ! भारी बडमाश हाय।"

गुलाबखाँ चुप रहे।

"टुमने वजीर साहब पर वार किया था ! वेल ! हम टुमको मार-मारकर शीढा करेगा।....ले जाओ !"

उस्ताद एक तंग और गंदी कोठरी में बंद कर दिए गए।

और, अब उस्ताद एक बार बहुत गंभीर हो गए। उन्होंने देखा कोठरी में एक छिद्र से जरा जरा-सी रोशनी आ रही थी। उन्होंने देखा पेशाब-टट्टी के वास्ते उसी तंग जगह में दो बर्तन मिट्टी के रक्खे हुए थे, और पेशाबवाले बर्तन में तो किसी ने पेशाब किया भी था; जिसकी बदबू से कोठरी नरक हो रही थी।

"आह !" उस्ताद सोचने लगे—"यही वह मदनसिंह है, जो मुझे देवता-सा पूजता था। मेरी कला से मुग्ध हो सिंहासन छोड़ जमीन पर आ बैठता था। वही मदनसिंह इतना पतित, ऐसा नीच हो सकता है ! ठीक है—बुजुर्गों का कहना ठीक है कि 'राजा की दोस्ती साँपों का खेल है।'"

"मगर यह अँगरेज"—उस्ताद गौर आस्ट्रियन को भी अँगरेज ही समझते थे—"अँगरेज तो बड़े मुंसिफ मिज़ाज होते हैं, पर यह साहब—निहायत ज़ालिम मालूम पड़ता है। बिना समझे-बूझे हाकिमों के इशारे पर शरीफ़ ग़रीबों को पागल बनाता फिरता है।

"फिर पागल ही अगर कोई हो, तो क्या उसे मारना-पीटना चाहिए ? कलकत्ते में एक बंगाली जज बोलता था कि विलायतों में पागलों पर बड़ी मुलायम नज़र रक्खी जाती है। उन्हें तरह-तरह की तरकीबों—सहूलियतों से सुधारा जाता है। जज तो यहाँ तक कहता था कि विलायती पागल हफ़्ते में एक बार गाना-बजाना भी सुनते हैं, और संगीत के प्रभाव से बहुतेरे अच्छे भी होते हैं। मगर अफ़सोस ! वही विलायती साहब इस देश के 'बनाए गए' पागलों की साँसतें करता है, मारता-पीटता, सताता है !"

"अफ़सोस !" उस्ताद मन-ही-मन झंखने लगे—"अफ़सोस है इस राजा के लिये, जो खुद पानी की तरह साफ़ है, मगर जिस पर कोई भी जोरदार रंग फ़ौरन् चढ़ जाता है। ज़रूर इतने गुनाहों पर कोई आराम से नहीं रह सकता, और ज़रूर जल्द ही मदनसिंह को अपने किए पर पछताना ही नहीं, रोना भी पड़ेगा !"

स्वर-चिकित्सा

उस्ताद के पागलखाने में पहुँचने के तीसरे दिन का वाक़या है। सवेरे साढ़े दस बजे आस्ट्रियन सुपरिटेंडेंट अपने बँगले से पागलखाने जाने की तैयारी कर ही रहा था कि बेहरे ने आकर सेक्रेटरी रंगीनख़ाँ के आने की सूचना दी।

"हेलो सर!" दूसरे कमरे में भेंट होते ही रंगीनख़ाँ ने साहब से दरियाफ़्त किया—"वह पागल गवैया कैसा है?"

"पागल गवैया?" पहले कुछ भी न समझ और अंत में अटकल लगाता हुआ साहब बोला—"आह! समझा, जिसके बारे में आपने मुझे सूचना दी थी, मगर अभी तक तो मैं उसे 'अटेंड' न कर सका!"

"जल्दी मेरी बात मानिए। जल्दी किसी असली पागल से उसे मरवा डालिए।"

"आज जरूर मैं उसकी मुनासिब खबर लूँगा!"

रंगीनख़ाँ के जाते ही आस्ट्रियन साहब पागलखाने में आया। सभी पागलों को 'परेड' में हाज़िर होने की आज्ञा उसने दी।

"मगर हुज़ूर।" एक मातहत ने झुककर निवेदन किया—"बंद कोठरियों के एक दर्जन पागल तो निहायत ख़तरनाक हैं। खुले आम वे बाहर नहीं रक्खे जा सकते।"

"उन्हें दूसरे सिपाही पकड़े रक्खेंगे, मगर बाहर निकालो सबको। साथ ही गुलाबखाँ-नामक पागल को हाजिर करो।"

पागलखाने के गोलंबर या 'सरकिल' के बाहर, मगर हाते के अंदर ही, एक छोटा-सा मैदान था, उसी में सारे पागल इकट्ठे किए गए।

उनमें कुछ तो असल पागल ही थे, और बहुत यातनाओं से पागल हो गए थे, मगर उनमें पचासों प्राणी बिलकुल पागल नहीं, और पूरे होशियार थे।

जो असल पागल थे, उनमें कुछ तो पागलपन की आँधी में उड़ रहे थे। उन्हें पागलखाने के सिपाहियों ने पकड़कर वश में कर रक्खा था, फिर भी मुँह से, इशारों से वे अपना स्वभाव व्यक्त करते रहे। जैसे एक रह-रहकर पुकार उठता था—"मैं उसकी मा को—उसकी मा को पकड़ लाऊँगा, जो साला मेरी बीवी को भगा ले गया है। मैं मार डालूँगा, मैं उस बदमाश के बच्चे को मार डालूँगा!"

एक पागल किसी बीती घटना को याद कर मन-ही-मन, मगर जोर-जोर से तर्क करता था—"हँ-हँ! बेटी मेरी और राजा के आदमी ले गए—हँ-हँ! प्रजा की बेटी मानो राजा के बाप की बेटी है हँ-हँ!"

दूसरा पागल किसी दूसरी घटना को याद कर रक्षकों को मारने की कोशिश करता था, और चिल्लाता था—

"मुझे—मुझे पकड़कर मेरी इज्ज़त—मेरे घर की औरतों की इज्ज़त न लूटो—मुझे छोड़ दो बुज़दिलो ! मैं तुम्हें गाजर-मूली-सा काट फेकूँगा।"

जोधपुर का कोई साधु भी पागलख़ाने में था, क्योंकि उसकी पाली हुई एक युवती बालिका को राजा ने जबरदस्ती पकड़वा मँगाया था। मगर उक्त साधु की कहानी रंगीनख़ाँ के ज़माने की नहीं, बल्कि उससे कोई अट्ठारह बरस पुरानी है। कहने-वाले कहते हैं कि कोई अट्ठारह बरस पहले भारत-भ्रमण करता हुआ वह साधु एक सुंदरी युवती बालिका के साथ धर्मपुर आया था।

बालिका इतनी सुंदरी थी कि वर्तमान महाराज, जो उन दिनों युवराज थे, एक दिन बाज़ार में उसे साधु के साथ देखते ही रीझ गए।

उन्होंने इशारा कर साधु को अपने एक प्राइवेट महल में बुलाया। आदर-सत्कार किया। कन्या की भी पूजा-प्रतिष्ठा हुई—दोनो को विविध वस्त्र और रुपए भी मिले। और, साधु से युवराज ने दो-चार दिनों अतिथि रहने की प्रार्थना की।

और, पहली रात युवराज मदनसिंह के गुर्गे साधु की युवती बालिका को मुँह बंद कर उड़ा ले गए।

सबेरे एकाएक कन्या को ग़ायब देख साधु के कान खड़े हुए। उसने सोचा—"ओह ! युवती लड़की के साथ राजपुत्र का मेहमान बनना ही मेरी भूल थी, मगर अब...."

उसने राजा से हाथ जोड़कर बिनती की कि वह लड़की लौटा दी जाय, मगर बार-बार महाराज लड़की के बारे में जानकारी से इनकार करते रहे। दिखाने के लिये उन्होंने साधु के सामने लड़की की तलाश के लिये ताक़ीद भी की अपने कर्मचारियों को।

अब साधु अर्ध-विक्षिप्तवत् सारे धर्मपुर में चक्कर काटने और अपनी पालिता पुत्री का नाम ले-लेकर रोने-पुकारने, ढूँढ़ने लगा।

और, वह डेढ़ साल तक धर्मपुर की गलियों में दौड़ता रहा। आख़िर एक दिन वह लड़की उसे मिली!

आधी रात के वक़्त साधु धर्मपुर-राज्य के बाहरी फाटक के उस पार खड़ा बड़बड़ा रहा था कि उसे कोई स्त्री-छाया दिखाई पड़ी। बरसों से वह किसी भी स्त्री को 'बेटी! बेटी!' पुकार अपनी लड़की के धोके रोक टोक देता था। इस स्त्री को बेटी! मेरी बेटी! कहकर साधु ने घेरा—अह! सचमुच वह उसकी बेटी थी, मगर इस संयोग से साधु का असंतोष और भी बढ़ा। उसने देखा, उसकी फूल-सी लड़की काँटा-सी सूखी थी, उसने देखा वह जीवित युवती से मृत प्रेत-विशेष मालूम पड़ती थी।

"क्यों बेटी?"

"युवराज!" रोती हुई वह बोली—'युवराज ने मेरा सर्वनाश कर दिया। झूठे वादे कर मुझे कलंकिनी बना

उन्होंने दूसरी युवतियों से मन उलझाया। दूर—दूर साधु पिता! मैं अभी-अभी अपनी बच्ची को काले कोसों दूर फेंके चली आ रही हूँ—हाय री मेरी गुलाब सी लड़की!"

इसके बाद कमर से छुरा निकालकर उसने अपने पालक पिता के सामने छाती में भोंक लिया—"ऐसे कलंकित जीवन से मरना ही अच्छा है।"

दूसरे दिन वह साधु भयानक पागल हो गया। घूम घूमकर वह राजा को गालियाँ देने लगा। अंत में उसे गिरफ़्तार कर जेल में रक्खा गया बरसों। और, कई बरसों से वह इस नए पागलख़ाने में है। अब साधु शांत भी बहुत कुछ हो गया है, मगर फिर भी, उस लड़की की याद आते ही, आसमान की तरफ़ शाप-भरी आँखों से देखकर वह भी परेड में पुकार उठता था—

"जो नहिं दंड करौं शठ तोरा,
मृथा होइ स्त्रुति मारग मोरा।"

एक तरफ़ एक पागल नंगा नाच-गा रहा था—

"अपने रा जा से नैना लड़ैबै
हमार कोई का करि है।"

यह सब हो ही रहा था कि साहब आ गया। उसके साथ रियासत के बीसों बंदूक़धारी भी आए। आते ही उसने पहले रंगीनख़ाँ के शिकार कलाकार को सामने बुलाया—

'टुम बडमाश है?"

"बदमाश नहीं साहब !" उस्ताद ने आस्ट्रियन पागल प्रोफ़ेसर को जवाब दिया—"मैं कमजोर हूँ, और बेशक, मज़बूतों की नजर में कमज़ोर बदमाश है।"

"मैं तुमको पिटवाऊँगा, नहीं तो तुम उस लड़की की बात भूल जाओ।"

"वह लड़की ख़ुदा की दी हुई है जनाब ! उसके लिये मैं जान दे-ले सकता हूँ !"

"चुप रहो !" साहब बिगड़ा। "मैं अभी तुमको पागलों से पिटवाऊँगा। सिपाहियो, पागलों के हाथ में तलवार दे दो, और छोड़ दो इस बूढ़े बंदर पर इन्हें।"

"अफ़सोस !" तरस खाते हुए आस्ट्रियन पागल प्रोफ़ेसर से उस्ताद ने कहा—"क्या आपके मुल्क में हुनरमंदों की यही इज्जत होती है ?"

"तुझमें क्या हुनर है ? बस, लड़की तेरी ख़ूबसूरत थी, जिसके लिये सरकार दस हज़ार देने को भी तैयार है। तू पागल है, जो पैसे लेकर लड़की बेच नहीं देता ! जैसे भी हो, पैसे पैदा करना हम लोगों का व्यापार है।"

"लानत है उस व्यापार पर, जो इज्जत खोकर गोरा या काला करे !"

"क्या ?"

"मैं हुनरमंद--कलावंत —ग़ैर-मामूली आदमी हूँ—मुझे तुझ-जैसा इज्जत-बेच आदमी नहीं पहचान सकता।"

"क्या ··· सिपाहियो ! तलवार दो पागलों को – तलवार दो इस खबीस पर ।"

"अरे जा !" नफ़रत से नाक सिकोड़कर उस्ताद ने गोरे को फटकारा—अरे जा ! मेरा रखवाला ख़ुदा है, ख़ुदा ! तू और तेरा पागलख़ाना····!"

"छोड़ो पागलों को ! मारो बदमाश को—मार डालो !"

तीर-से पागल झपटे गुलाबख़ाँ को तलवार से मारने के लिये। मामूली पागलों, होशियारों और सिपाहियों को उम्मीद हो गई कि चंद मिनटों में गुलाबख़ाँ की गर्दन ज़मीन के लिफ़ाफ़े पर ख़ून से मुहर लगाती नज़र आएगी।

और लो ! कलाकार जाग उठा उस्ताद गुलाबख़ाँ के अंदर का। वह भी तड़पकर कुछ गा चले ! पहले तो उन्होंने ऐसी-ऐसी आकर्षक-विकर्षक तानें लीं कि सब लोग कुछ समझ ही न सके; मगर चमके सभी। बुरा-से-बुरा जो पागल था, वह भी स्तब्ध तलवार लिए खड़ा रह गया। उस्ताद गाने लगे।

गाने लगे—'गौड़ सारंग' की कोई चीज़। उस्ताद ने इस दर्द से गाया, इस जोश से कि पागल रो-रो, हँस-हँस, रीझ-रीझकर होशियार हो गए। उन्हें मालूम पड़ा, मानो गुलाबख़ाँ के गले में जादू की वंशी बोल रही है।

उस्ताद वीरासन बैठकर तल्लीन-भाव से गा रहे थे। उस समय न तो उन्हें पागलख़ाने की याद थी, न फ़ीरोज़ी की और न अपनी !

आध घंटे बाद हैरत से पागल हो पागलों के पछाहीं प्रोफ़ेसर ने देखा कि बुरे-से-बुरे पागल भी उस्ताद को घेरकर, हाथ जोड़कर शांत बैठ गए !

प्रोफ़ेसर ने देखा कि उस्ताद की एक-एक तान का प्रभाव पागलों पर जादू-सा पड़ता था। वे आत्मविभोर होकर महान् कलावंत के मुँह की ओर चंद्रचकोर हो रहे थे !

हैरान गोरा

उस दिन ऑफिस टाइम के बाद वह आस्ट्रियन पागल-प्रोफ़ेसर बहुत हैरान-परेशान बँगले को लौटा।

हैरान था वह उस दुबले-पतले—फ़िलहाल दुखों से झुराए—कलावंत का प्रभाव देखकर।

और, ज्यादा हैरान था वह इस बात पर कि कोई आदमी किसी हीले से ऐसे होशियार-समझदार को पागलखाने में भेज सकता है।

यह शख्स—यह बूढ़ा गुलाबखाँ—अगर अमेरिका में होता—गोरा होता या काला ही सही, तो इसकी आमदनी होती लाखों माहवार। इसके गुणों की विरदावली बड़े-बड़े काग़जों में सचित्र-विचित्र छपती। यह 'नेशन' का रत्न हो जाता—दुर्लभ और बेशक़ीमत।

संगीत! जिसकी सहायता से वियना के अनेक प्रोफ़ेसरों ने, संसार के एक-एक प्रोफ़ेसर के साथ पागलों को सुधारना चाहा—कुछ असर भी नजर आया—मगर ऐसा नहीं, जिसे विश्वस्त और निश्चित कहा जाय।

लेकिन इस आदमी ने—ओह! मैं भूलूँगा नहीं आज की

घटना को—कमाल कर दिया, कमाल। धर्मपुर-पागलखाने में ऐसे-ऐसे पागल हैं, जिनकी दवा 'गॉड' भी नहीं कर सकता। मगर उन्हें इस आदमी ने नीरोग, बाहोश बना दिया। हाँ, बना दिया, और अपनी साधना के महज़ एक 'टच' से!

साहब ने मन-ही-मन तय कर लिया कि वह गुलाबखाँ को हरगिज़ तकलीफ़ न देंगे, बल्कि भरसक आराम पहुँचाते हुए हिफ़ाज़त करेंगे।

बँगले पर आते ही पागल-प्रोफ़ेसर साहब ने देखा, उनकी राजा-विमोहिनी सुंदरी कुछ या बहुत कुछ कहने को उत्सुक है।

"आह! डियर" उसने कहा—"आज तुम लेट हो? कब से मैं कुछ कहने के लिये तुम्हारी राह..."

"लेकिन प्रिये!" आस्ट्रियन गोरे ने गंभीरता से कहा—"मैं जो खबर सुनाऊँगा, उसका महत्त्व—माफ़ करना! तुम्हारी बातों से विशेष है। मैंने आज पागल...."

"पहले मैं—नो! तुम नहीं।" मेम ने उत्सुकता की हद दिखा दी—"मैं तुम्हारे इंतज़ार में थी। आज मैंने सुना ही नहीं, राजा मदनसिंह का छिपा हरम आँखों से देखा है।"

"क्या छिपा हरम?"

"हाँ-हाँ, यह राजा नहीं, राक्षस है। मैं इसे बहुत दिनों तक भला आदमी और प्रेमी समझती थी, मगर आज सेक्रेटरी रंगीनखाँ की मदद से मैं इसका भेद जान सकी। मैंने देखा, एक पूरा महल औरतों का 'सेंट्रल जेल' है। मैंने

गिना उसमें हज़ारों—अविश्वास न करो—हज़ारों औरतें क़ैदी हैं।"

"क्यों ? क्यों ? तुम क्या कहती हो ?"

"मैं सच कह रही हूँ।" राजा से चिढ़ी मेम ने साहब को समझाया—"ऐसा राजा हमारे कांटिनेंट में एक क्षण भी क़ानूनी जंजीर के बाहर रहने न पाता। वे हज़ारों औरतें केवल एक बार राजा की सेवा में रही हैं, और फिर हरम या जेल में। उन्हें खाना और कपड़े किसी क़दर मिलते हैं—और बस। सख़्त पहरे में वे रहती हैं। कोई भी पुरुष, बशर्ते कि वह रंगीनख़ाँ-सा उस्ताद न हो; उन्हें नहीं देख सकता। और, बेचारियाँ बे-मौसम ही मुर्झा मुर्झाकर उसी में मर-खप रही हैं!"

"तब तो ..." नाक फुलाकर आस्ट्रियन बोला—"इस राजा को सबसे पहले मेरे चार्ज या पागलख़ाने में आना चाहिए। मैं रज़िडेंट से इसकी चर्चा जरूर करूँगा। बेशक इस राज्य में हमें तनख़्वाह भारी मिलती है, और सारी बेगारियाँ भी, मगर ग़ुलामी करानेवाला धीरे-धीरे ख़ुद भी ग़ुलाम हो जाता है। लानत है ऐसी तनख़्वाह पर डियर जो नामुनासिब काम के लिये मिले।"

इसके बाद साहब ने मेम साहब को उस्ताद गुलाबख़ाँ का परिचय दिया। रंगीनख़ाँ ने उसका क़िस्सा सुनाया—बतलाया कैसे पहले उसकी लड़की उड़ाई गई, और शोरोगुल के डर से वह कलावंत पागल बनाकर उसके पास भेजा गया। रंगीनख़ाँ

की बातों में आ किस शैतानी ग़ुस्से से वह ग़ुलाबख़ाँ की जान पागलों से मरवा डालना चाहता था। इसको अपनी बीवी से कहते हुए पागलों का प्रोफ़ेसर मन-ही-मन लज्जित-सा नज़र आया, मगर जब वह ग़ुलाबख़ाँ के अद्भुत गाने की तारीफ़ करने लगा, तब उसे शब्द नहीं मिले।

"ऐसी बात!" मेम ने कहा—"तब तो वह आदमी 'वंडर' है।"

"ज़रूर कल तुम मेरे साथ पागलखाने चलना। मैं उसका गाना तुम्हें सुनाऊँगा—ओह डियर! वह आदमी नहीं, फ़रिश्ता है—देव!"

"तब उसको तुम रिहा क्यों नहीं कर देते?" मेम करुणा-मयी हो उठी।

"बात यों है…" समझाया साहब ने—'रिहा तो मैं ज़रूर कर दूँ और अभी, लेकिन इस अपराधमय राज्य के गुंडे और राजा के पालतू शिकारी कुत्ते उसे साँस भी न लेने देंगे। पहले रेज़िडेंट से परिस्थिति साफ़ कर उसकी रक्षा का इंतज़ाम कर लूँ, फिर वह कलाकार रिहा होगा। इतना ही नहीं, मैं तो उसे आस्ट्रिया ले जाना चाहता हूँ, और वहाँ के दूसरे मस्तिष्क-प्रोफ़ेसरों को पागलों पर उसके गाने का असर दिखलाना चाहता हूँ।"

"और....।" मेम ने भी साहब का समर्थन किया—"और, आस्ट्रिया में हम एक 'म्यूज़िकल' संस्था खोलेंगे, और अपने देशवासियों को हिंदुस्थान के इस आचार्य से शिक्षा दिलाएँगे।

इसी समय साहब का मुसलमान 'छोकरा' आकर रोने लगा—"हुजूर, मेरी मा मर गई" मुझे एक महीने की छुट्टी दीजिए।"

"वेल!" साहब ने कहा—"टुम्हारी मा के मरने का अफ़सोस है। बेशक, टुम छुट्टी पर घर जा सकटा है।"

"हुजूर को मेरी ग़ैरहाजिरी खले नहीं, इसलिये" छोकरे ने कहा—"मैंने अपने मौसेरे भाई को बुला लिया है। उसको मैं हुजूर की खिदमत में अपने एवज़ में लगा जाऊँगा।

"होशियार है हुजूर मेरा मौसेरा भाई! उससे आप ख़ुश होंगे। बुलाऊँ?"

"क्या बँगले पर अभी आया है वह? बेशक बुलाओ।"

क्षण-भर बाद छोकरे से देखने में कोई दो साल बड़ा एक युवक साहब के सामने हाजिर हुआ—छुट्टी पर जानेवाले 'बॉय' का मौसेरा भाई!

"वेल! टुम्हारा नाम?" पागलों के आस्ट्रियन प्रोफ़ेसर ने नए छोकरे से पूछा।

और, झुककर फुर्ती से सलाम करते हुए नए छोकरे ने अपना नाम बतलाया—"अब्दुल रहीम!"

सफ़ाई

पिछली लकीरों में इस कहानी के धर्मपुर-राज्य के महाराज पर अनेक-अनेक दोषारोपण किए गए हैं, मगर उक्त राजा की चर्चा में सहृदयता ही दिखाई गई है। क्यों?

इसलिये नहीं कि महाराज के कुकर्मों से किसी की सहानुभूति है, मगर इसलिये, जरूर हाँ कि अनेक अत्याचारों में जितना हिस्सा राजा के वज़ीरों और उनके संचालकों का होता था, उतना स्वयं उनका नहीं।

फ्रांस का वह कौन बादशाह था—लुई, सोलहवाँ? जो बदज़ात खुद न तो बुरा था, और न अत्याचारी—अत्याचारी और बुरा कोई दूसरा ही लुई था—मगर, लुई नाम के कारण शाही-पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण क्रांति के कोलाहल में उसको कुत्तों की मौत मरना पड़ा! यानी औरों के पाप का बदला चुकाया गया किसी भवजाल में जकड़े राजा-नामक निरीह जीव से!

रूस का अंतिम ज़ार निकोलस भी तो स्वयं शरीफ़-तबियत था, मगर वातावरण वह, जिसमें उसका विकास हो रहा था, निहायत विषाक्त था। ज़ार के मंत्री बेईमान और दूसरे देशों के भेदिया विभीषण-मात्र थे, मगर क्रांति ने

लोकमत के भयानक न्याय-देवता ने न तो कुमंत्रियों को छोड़ा, और न सु-राजा को ! सभी उसकी पंचक्की के दोनो पाटों में पकड़े जाकर चटनी-से पीस डाले गए।

वैसे ही जनाब ! महाराज मदनसिंह बुरे आदमी हरगिज़ नहीं, बल्कि भले भी माने जायँगे, मगर वातावरण वह, जिसमें उनका विकास हुआ, निहायत अयोग्य और अनार्य था। सूर्यवंशी भारतीय क्षत्रिय के बालक का पहला गुरु हुआ एक .फ्रेंच विद्वान् !

और .फ्रेंच विद्वान् ने अपने राजकुमार शिष्य को न तो लड़ना सिखाया, और न मरना। पहली शिक्षा उसने कुमार मदनसिंह को दी नाचने की।

फिर उसने कुमार को अच्छे-अच्छे चुरुटों का चस्का लगाया, और फिर 'वाइन' और फिर '.फ्रेंच लव' का ! और, फ़िलॉसफ़ी समझाई गई कि लड़ाकू बनने से 'लवली' होना बेहतर है—अधिक सभ्यता और विकसित मनुष्यता का लक्षण है !

तो फिर ज्यों-ज्यों मदनसिंह युवक होते गए, त्यों-त्यों बहुतायत से युवतियाँ उनके निकट पहुँचाई गईं—जुटाई गईं !

यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने समझ लिया, क़बूल कर लिया कि राजा को केवल विलास ही के लिये भगवान् बनाता है। राजा अन्याय कभी कर ही नहीं सकता। राजा—प्रजा से जैसे चाहे, वैसे—अपनी प्रसन्नता के लिये जो चाहे, वही ले सकता है।

ऐसी भावना होते ही मदनसिंह समाज के लिये सर्प की तरह घातक बन गए। बिलकुल फ्रेंच नग्नता से उन्होंने अपने पिता के जीते ही आनंदोपभोग शुरू कर दिया।

फिर भी बूढ़े राजा के बाद विलासी मदनसिंह ही धर्मपुर की राजगद्दी पर पधराए गए। क्यों? कौन ज़िम्मेदार है ऐसे ग़ैरज़िम्मेदार कुमार को तख़्त पर बैठाने का? परमेश्वर? नहीं, प्रजा? वह भी नहीं। मदनसिंह को आमरण पतित रखने के लिये ज़िम्मेदार है वह छिपी शक्ति, जिसकी ज़िंदगी मदनसिंह-जैसों के सर्वनाश ही के लिये है।

बहुतों का ऐसा ख़याल है कि जब तक उनके कान भरे नहीं जाते, उन्हें उभारा नहीं जाता, मदनसिंहजी निहायत सहृदय, उदार और ग़रीब-परवर रहते हैं; मगर मौक़ा मिलते ही राज्य का कोई-न-कोई ज़िम्मेदार अधिकारी उनके सामने एक-न-एक हूरोपरी हाज़िर कर देता है। फ़्रेंच प्रोफ़ेसर से पढ़े महाराज सौंदर्य और सुरा में डूबकर नाचने लगते हैं। प्रजा का धन चुरुटों के धुआँ में उड़ता है।

राजा के लबादे में छिपकर राजा ही को मार डालनेवाले ज़िम्मेदार अधिकारी मौजें मारने लगे—बात मानिए। अगर राजा एक भोगता था, तो उसके नाशक पाँच!

अंत में पागल विलास के लिये मदनसिंह को अपने हम-प्याले-निवाले लोगों के साथ दूर-दूर तक जाना पड़ा। घर-घर की लड़कियों की पुकार हुई, और सारी प्रजा में हाहाकार मच गया!

अच्छा, महाराज समयों पर उदार जरूर नज़र आते हैं, मगर वही एक तरह के आदमियों के लिये, याने जो उनके विलास के सहायक हों। वेश्याएँ, गवैए, साज़िंदे, चापलूस, विदूषक वग़ैरा।

महाराज का मन ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई कॉलेज या विश्वविद्यालय राज्य के बालकों के लिये खोलें, या जनता के लिये कोई बाग़-बग़ीचा, तालाब तैयार कराएँ, या रियासत के ग़रीब-दुखियों का दुःख दूर करने की कोशिश करें। महाराज शायद ग़रीब शब्द को मज़े से बोल भी नहीं सकते थे।

जो हो, मगर फ़ीरोज़ी के व्यक्तित्व और कला के आगे महाराज का पापी मन हमेशा ही शांत हो जाता। उस माल-कोसवाली घटना के बाद जब-जब किसी दूसरे अर्थ से महा-राज फ़ीरोज़ी के पास गए, तब-तब इनके जाते ही वह कोई-न-कोई राग-रागिनी गाने-बजाने लगी। तब-तब महाराज स्वरों से मस्त हो गए, और वासना-हीन भी!

किंतु संगीत का प्रभाव दूर होते ही वह सुंदरी फ़ीरोज़ी के लिये पागल हो उठते! बार-बार रंगीनख़ाँ को बुलाते, और कोई तरकीब पूछते।

"तरकीब क्या हुज़ूर!" वह बोलता—"जब आपको देखते ही वह जरूर गाएगी, और उसके गाते ही ग़रीब परवर असल काम ही भूल जायँगे, तब बंदा क्या कर सकता है?"

"कोई ऐसी तरकीब, जिससे कुछ दिनों गाना-बजाना वह

भूल जाय। उसकी कला में इतना जोर है कि मैं उसकी ओर निहार तक नहीं सकता। तब तक, जब तक वह संगीत-रत रहती है।"

"हुजूर उसको नशा दिया जाय, तो?"

"वह नहीं पिएगी। सारा मजा फीका हो जायगा उसको राजी करने में। लड़की हठीली और खास मिजाजवाली है।"

"मैं इस तरह का नशा तैयार करा दूँगा, जो चंदन के बुरादे में मिलाकर उसके कमरे में सुगंधित धुएँ के बहाने फैलाया जा सकेगा!"

"तब वह बेहोश हो जायगी और गा-बजा न सकेगी? मुर्दे-सी पलग पर......"

"नहीं हुजूर, बेहोश नहीं, मदमस्त हो जायगी, उस धुएँ से और सब कुछ भूलकर आपसे लिपट जायगी।"

"वाह वजीर! तुम निहायत बुद्धिमान् हो।"

मगर

पंद्रह दिनों से वह मुसलमान सुंदरी महाराज की आँखों के सामने नाच रही थी, और उसके गुणों के आगे वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। अब उनके कामुक मन के धैर्य की हद हो गई।

रंगीनखाँ को कोई तरकीब ढूँढ़ने की आज्ञा देकर भी वह शांत न हो सके, और मन-ही-मन फ़ीरोज़ी को पाने की तरकीबें सोचने लगे, और ऐसा ही करते हुए शाम हो गई, मगर वह किसी निश्चय पर न आ सके। आखिर, लाचार हो महाराज मन को ज़रा राहत देने के लिये शराब पीने लगे।

रात्रि के ८ बज गए, १० और १२ भी, मगर महाराज पीते ही रहे, और सोचते ही···! आखिर इंतहाए नशा में उन्हें कुछ होश आया। होश आया तब, जब एक दासी ने आकर निवेदन किया—"सरकार, आज किस महल में (किस रानी के साथ) विश्राम करेंगे?"

"किसी रानी···" अर्ध-जाग्रत् ढंग से उन्होंने जवाब दिया—"फ़ीरोज़ी···रानी फ़ीरोज़ी के महल में!"

"मगर हुज़ूर!" डरी हुई दासी बोली—"वह तो पास में तेज़ छुरा और सितार रखकर सोती हैं।"

"ठीक है। राजा प्रसन्न हुए तरकीब एक पाकर—"दासी। धीरे से जाकर दबे पाँव तू फ़ीरोज़ी का छुरा और सितार उससे दूर कर दे! मैं अभी आता हूँ।"

दासी जाना ही चाहती थी कि महाराज ने उसे पुनः आकर्षित किया—"ओह! ओह मैं उसके लिये पागल हो रहा हूँ सुंदरी!"

फ़ीरोज़ी की याद में महाराज ने दासी को कलेजे से कसकर लगाया, और देर तक उसका मुख चूमते रहे फ़ीरोज़ी के धोखे। आखिर अपनी उत्तेजित अवस्था का ज्ञान हुआ उन्हें।

"जा जल्द! छुरा और सितार हटा दे!" और, दासी जा ही रही थी कि उतने नशे में भी महाराज ने सोचा कि दासी का इनाम नहीं मिला।

"देख!" उसे पुनः आकर्षित कर महाराज ने अपने गले से मोतियों की क़ीमती माला उपहार में दी।

और दासी राजा के प्रसाद से फूली न समाती, महाराज के हार को बार-बार निहारती और उनके चुंबन को ओठों से चाट-चाटकर, रस लेती फ़ीरोज़ी के कमरे में आई।

फ़ीरोज़ी सो रही थी। साँस वह इतनी तेज़ ले रही थी कि निद्रा घनघोर मालूम पड़ती थी। वह चित सोई थी। मुँह उसका खुला था। उसका दाहना हाथ छाती के बाएँ उभार पर था। तर्जनी उँगली में अभी तक मिज़राब नज़र आ रही थी, जिससे अनुमान होता था कि वह सितार बजाते-बजाते सो

गई है। सितार उसकी बग़ल में बाँई तरफ़ था, और छुरा तकिया के पास दाहनी ओर!

चुपके-चुपके नजदीक जाकर दासी ने धीरे से सितार हटाना चाहा, मगर तुरंत ही तो फ़ीरोज़ी जाग उठी—"हूँ....!" याने मत हटाओ! कहकर उसने छाती से उठाकर मिज़राबवाली उँगली को सितार के एक तार—पंचमवाले पर—मारा।

निद्रावस्था में भी उस कलामयी की मिज़राब सच्ची पड़ी। निशा की स्तब्धता—पंचम—पीड़ित पुकार उठी! सारे कमरे में माशूक़ की मुस्किराहट की तरह छोटी-सी झंकार खिल उठी!

दासी क्षण-भर धक्-सी खड़ी रही। कारण पूछा जाने पर क्या जवाब देगी, यही सोचती रही। इतने में उसने फ़ीरोज़ी को बर्राते सुना—"अब्बा—अब्बा! तुम कहाँ हो? बचाओ!"

चालाक औरत—वह, दासी—समझ गई कि फ़ीरोज़ी घोर निद्रा में है। इस बार उसने पहले छुरे को हटाया, और फिर धीरे से सितार को भी।

दासी दोनो चीजें लिए कमरे से निकल ही रही थी कि लुढ़कते आते महाराज को उसने देखा। महाराज मदनसिंह सुंदर थे ही; उस पर नशा और फ़ीरोज़ी की कामना ने उनको और भी सुंदर बना रक्खा था। फ़ीरोज़ी के भाग्य पर दासी के

मन में घोर डाह उत्पन्न हुआ। सितार और छुरे के साथ वह महाराज के रास्ते में खड़ी हो गई! मंद मुस्किराते मुख को ऊपर उठा दासी ने महाराज से काम बजाने का उपहार इशारों में ओठों से माँगा। महाराज ने ओठों को गंभीर पुरस्कार दिया—सुगंधित! दासी का छोटा कमरा फ़ीरोज़ी के बड़े कमरे के पास ही था। उसी में वह सितार और छुरा रखने चली—महाराज के नशे से पगली!

और, महाराज मदनसिंह उस बड़े राजसी कमरे में पधारे झूमते हुए मोटे रेशमी ग़लीचों पर। एक बार तो लड़खड़ाकर गिरे भी। मगर ग़लीचों की वजह से किसी को कोई आहट न लगी। हाँ, महाराज विशेष सजग हो गए।

लापरवाह तेज़ी से वह फ़ीरोज़ी के पलंग के पास झपटे हुए गए। आह! नशे में उन्होंने देखा—देखा रमणी का रूप, यौवन और लावण्य का परम आकर्षक नज़्ज़ारा। उस रूप को देखकर महाराज की शराब फीकी पड़ गई और फ़ीरोज़ी का नशा चढ़ गया।

"ओह! सुंदरी! मेरी जान ...!" कहकर उन्होंने सोई हुई फ़ीरोज़ी को—जिसके उस्ताद ग़ुलाबख़ाँ ख़ुदा की बेटी कहते थे—गले से लगा लिया। कस-कसकर!

वह जगी, और तुरंत ही परिस्थिति उसकी समझ में आ गई। मारे घृणा, जोश, दुर्बलता और क्रोध से वह चमक उठी। सच मानिए, जैसे पानी की मछली किसी के हाथ से पुनः

पानी में चमककर उछल जाय, वैसे ही फ़ीरोज़ी महाराज की गोद से कौंधकर निकल गई। अब मदनसिंहजी पलंग पर थे पागल—और फ़ीरोज़ी पृथ्वी पर पट।

चूहे पर बिल्ली की तरह मदनसिंहजी पलंग से औरत पर टूटे। उन्होंने फ़ीरोज़ी को पुनः वश में करने की कोशिश की। अब वह लड़की चिल्ला उठी—"बचाओ! मेरे अल्लाह! बचाओ!"

फ़ीरोज़ी पाक लड़की थी, और धर्मपुर का राजा नापाक आदमी था। फ़ीरोज़ी की आत्मा मदनसिंह से विशेष बलवती थी। बला से वह अबला थी, तो क्या? अपनी इज़्ज़त बचाने की कोशिश में उसने मदनसिंह को दाँतों से काट-काटकर ज़ख़्मी बना दिया—मारे लातों के बंधन ढीला कर दिया। वह छूटकर भागी! भागी कमरे से बाहर, और बाज़-सी झपटकर वह दासी की छोटी कोठरी में घुस गई। भीतर से दरवाज़ा उसने बंद कर लिया।

फिर महाराज मदनसिंह ने लाख थपकियाँ दीं, राजपाट देने और रानी बनाने के वादे किए—मार डालने की धमकियाँ तक उन्होंने आवेश में दीं फ़ीरोज़ी को, मगर दरवाज़ा न खुला—न खुला!

और, वह दासी भी अंदर ही बंद थी। महाराज की आज्ञा से जब तक वह अपनी ओर से द्वार खोलने का यत्न करे, तब तक फ़ीरोज़ी को उसी कोठरी में उस छुरे का पता मिल गया!

छुरा अभागिनी दासी की छाती पर तानकर उसने ताने से कहा—"चुड़ैल! औरत होकर अगर शैतान की मदद करेगी, तो तेरी नाक काट लूँगी!"

उत्तेजित फ़ीरोज़ी की आँखों में जो बिजली उस समय दासी ने देखी, उससे वह दहल उठी। फ़ीरोज़ी छुरा कहीं चला न दे, इस भय से दासी थर-थर काँपने लगी!

साधु की लड़की

लाचार हो महाराज सावेश अपने एक निजी कमरे में चले आए। महाराज को क्रोध नहीं था फ़ीरोज़ी पर—हाँ, अफ़सोस यह ज़रूर था कि वह हाथ से निकल क्यों गई !

कमरे में आते ही महाराज आइने के सामने अपना अस्त-व्यस्त रूप देखने को खड़े हो गए। उन्होंने अपने बाएँ गाल पर फ़ीरोज़ी के नाख़ूनों का निशान और रक्त देखा। फिर भी वह विरक्त न हो अनुरक्त ही रहे उस पर ! महाराज सिहर उठे !

क्रोध से पागल उस युवती ने महाराज की कलाइयों को दाँतों से कुतर दिया था। तर-तर रक्त कमरे के बिस्तर पर बरस रहा था, मगर नशे के कारण दर्द नहीं मालूम पड़ता था। रक्ताक्त कलाई देखने को महाराज ने प्रकाश में हाथ ऊँचा किया, और उन्हें मालूम पड़ा कि उनकी दाहनी मुट्ठी बँधी है। बँधी है पचीसों मिनट से ! शायद फ़ीरोज़ी से लड़ने के वक्त उनकी मुट्ठी में कुछ आ गया था, और वह आवेश और नशे की बेहोशी से अभी तक वहीं उसी हालत में रही। होश इकट्ठा करते हुए महाराज मदन ने अपनी मुट्ठी खोली !

सोने की एक गोल तावीज़ ज़ंजीर में गुथी हुई कहाँ से आई ? क्या········

महाराज सोचने लगे। नशा घनघोर होने पर भी चंद मिनट पीछे की घटनाएँ झिलमिल मानस-पट पर लहरा गई। महाराज की ज़बरदस्ती से बचने के लिये फ़ीरोज़ी उनकी कलाई अपने दाँतों से कुतर रही है—महाराज को दर्द का अनुभव हुआ—ज़रा प्रतिक्रिया—क्रोध-वश—उन्होंने फ़ीरोज़ी के गले पर हाथ मारा। मगर आघात पड़ा हृदय पर, जिस पर सोने की जंजीर में वह तावीज़ थी। झटके से, नशे में, हाथ के दर्द से घबरा, महाराज ने फ़ीरोज़ी के गले से तावीज़ को तोड़कर अपनी मुट्ठी में कर लिया। और, तब तक वह सुंदरी उनकी मुट्ठी से बाहर और दासी की कोठरी के अंदर हो गई!

तब से इस कमरे में आने तक महाराज की वह मुट्ठी बंद ही रही। उन्हें उस ओर सोचने का वक्त ही न मिला। एकाएक तावीज़ को देते ही फ़ीरोज़ी की खिली जवानी महाराज के मन में महक उठी। उन्होंने उसको चूम लिया। महाराज प्रेम-चिह्न की तरह रखने के लिये उस तावीज़ को एक क़ीमती अलमारी की तरफ़ ले चले।

अलमारी खोलते ही प्रेम का एक छोटा-सा संग्रहालय नज़र आया। उसमें महाराज ने अपनी किसी प्रेमिका का हार रक्खा था, तो किसी के केशों का गुच्छा। किसी ख़ूबसूरत विलायती बीबी की कोई एक जूती कहीं चमक रही थी, तो कहीं कोई मामूली रूमाल सोने के नन्हें-से केस में सादर रक्खा हुआ था। शायद मदनसिंह की हज़ारों चहेतियों के स्मरण-

चिह्न उस अलमारी में एकत्र किए गए थे, महाराज की इच्छा से।

और, महाराज की श्रीइच्छा से उसी अलमारी के एक कोने में हज़ारों पत्रों से भरा फ्रांस का बना हुआ एक बॉक्स था। वे सभी पत्र ऐसी औरतों के थे, जिन्हें महाराज ने बरबस अपने प्रेम-जाल में फँसाकर, फुसलाकर फुर्र से उड़ा दिया था!

नशा होने पर भी महाराज ने फ़ीरोज़ी के चिह्न को उसी बॉक्स में रखने की इच्छा की, जिसमें कि उसी तरह सताई सुंदरियों के पत्र आँसुओं और शापों से भरे रक्खे थे। उन्होंने बॉक्स को खोला। एक नीले रंग का लिफ़ाफ़ा सामने नज़र आया। महाराज, यों ही, राजेच्छा से उसे खोलकर पढ़ने लगे—"...तूने प्रेम का वादा कर धोखा दिया। तू आदमी नहीं, शैतान है...."

महाराज को भाषा सुरीली न लगी। बंद कर दिया लिफ़ाफ़े को, और लगे कोई दूसरा ढूँढ़ने। इस बार सफ़ेद रंग का एक लिफ़ाफ़ा उन्होंने खोला। उसमें अँगरेज़ी में लिखा कोई ख़त था—

"तू मुझे मेरे देश से प्रेम के नाम पर रानी बनाने का लालच दे बहका लाया, और अब दूसरियों को ठगने चला है! मगर मैं हिंदुस्तानी औरत नहीं, और न तुझ बदमाश की रियाया ही हूँ। इस मामले को मैं ब्रिटिश पार्लियामेंट तक ले जाऊँगी, और तेरी रियासत को कौड़ी-दामों पर बिकवा दूँगी।"

महाराज को याद आई। इसी औरत के लिये उन्हें दिल्ली

और शिमले की हवा खानी पड़ी थी। इसी के वास्ते उनके करोड़ों खर्च हुए थे।

इस बार महाराज ने एक पीला लिफ़ाफ़ा हाथ में लिया। इसमें लिखा था—"...मैं अगर सच्ची हूँ, अगर साधु के साथ ब्रह्मचारिणी-सी रही हूँ, तो मदन! तेरा नाश हो जायगा। आज ही मुझे एक लड़की हुई है, जिसे मैंने खून पीकर जंगल में काले कोसों फेंक दिया है—वह लड़की तेरी है अभागे! तुझ प्रजागामी की। मैं तो आज मौत के घाट लग जाऊँगी, मगर यह मेरा शाप है। वह तेरी लड़की मरेगी नहीं, बचेगी, और उसी से तेरा सर्वनाश होगा। उस लड़की की गर्दन में एक तावीज़ में उसके बाप—तुझ नारकीय का नाम लिखकर मैंने पहनाया है। मेरा विश्वास है कि रामबाण की तरह अचूक वह तावीज़ ज़रूर एक दिन तेरी मौत का कारण बनेगी। अरे मदनसिंह कामुक, पापी, भगवान् तेरा नाश करे!"

महाराज उस शाप को पढ़कर, हाथ में तावीज़ देखकर न-जाने किस भय से काँप उठे! वह पत्र जोधपुरी साधु की लड़की का था।

झटके से महाराज ने चुटकी से मसलकर तावीज़ को चूर-चूर कर दिया। यह देखने के लिये कि उसमें कोई काग़ज़—नाम है या मंत्र।

और टेढ़े-मेढ़े मुख से तावीज़ ने जो कुछ उगला, वह था पीले काग़ज़ का एक टुकड़ा।

वज्राक्षरों से भयानक और चमकीले हरफ़ों में काग़ज़ के टुकड़े पर लिखा था—"यह लड़की धर्मपुर के युवराज मदन-सिंह की पाप-पुत्री है। इसकी माता से विश्वासघात किया गया, जिसके लिये उसने अपघात कर लिया ! ''ल'''!"

"तो भय से बेहोश होते होते मदनसिंह ने सोचा—'क्या फ़ीरोज़ी मेरी ''मेरी'''पुत्री ''हे परमेश्वर !"

मदद

संसार की दूसरी ताक़तों की तरह सिद्धि या चमत्कार भी एक तरह की शक्ति ही है। जैसे ख़र्च कर देने के बाद धनिक की थैली-शक्ति एक बार क्षीण हो जाती है, या लड़ने के बाद पहलवान की ताक़त कुछ देर के लिये मंद हो जाती है, ठीक वैसे ही चमत्कार दिखाने के बाद योगी कुछ काल के लिये चमत्कार-हीन हो जाता है।

उस दिन आत्मरक्षार्थ, जो उस्ताद गुलाबख़ाँ ने नादयोग की सहायता से पागलों और पागल-प्रोफ़ेसर को वशीभूत किया, उसके बाद वह कुछ समय के लिये मृतवत् हो गए। असल में आस्ट्रियन साहब ने आवेश से बेहोश उस्ताद को पागलख़ाने के अस्पताल में भेजकर ऑफ़िस छोड़ा।

मगर अब साहब का रुख़ घंटे-भर पहले के रुख़ से बिलकुल भिन्न था। उन्होंने सिपाहियों को ख़ास हिदायत की कि कला-वंत को किसी तरह की ज़रा भी तकलीफ़ न होने पाए! तभी तो अस्पताल में होश आते ही उस्ताद ने वातावरण को बदला हुआ पाया। डॉक्टर, सिपाही, सेवक, सभी मुस्किराकर, दया दिखाते हुए उस्ताद की तरफ़ देख रहे थे। उनके देखने के ढंग में उस्ताद की महिमा की प्रशंसा स्पष्ट झलक रही थी।

और, लोगों की अच्छी नजर ने कलाकार के मन को ज्यादा राहत दी--असल में पागलों को मुग्ध करने के लिये अमानुषिक शक्ति से गाने के कारण उस्ताद परिश्रांत-से हो गए थे। जरा स्थिर होते ही वह स्वस्थ नजर आए।

"क्यों ?" उन्होंने उनसे पूछा, जो घेरकर खड़े थे—"आप लोग हैरान-से क्यों दिखाई पड़ते हैं ?"

"साहब ने कहा है कि' पागलखाने के डॉक्टर ने कहा है—"आपको जरा भी तकलीफ़ न होने पाए !"

"साहब को मेरा सलाम दो !" पलंग से उठते उस्ताद ने कहा—"और, मुझे मेरी कोठरी में पहुँचाओ। इस अस्पताल की बदबू ही से मैं बीमार हो जाऊँगा।"

और, आस्ट्रियन साहब ने जाने के पहले मातहतों को मजे में समझा दिया था कि उस्ताद होश में आने पर जैसा, जो कुछ कहें, वही किया जाय। फलतः इच्छा होते ही उस्ताद अपनी कोठरी में पहुँचा दिए गए।

"अब मुझे अकेला छोड़ दीजिए !" उस्ताद ने कहा, और उनकी आज्ञा का पालन फौरन् हुआ।

एकांत होते ही उस्ताद चिंतित हो उठे। रह-रहकर इस संसार और शरीर से उनके मन को विराग होने लगा। रह-रहकर फीरोजी पर पड़ी विपत्ति की याद से उस्ताद का दम घुटने लगा। उन्होंने सोचा—

धोका है संसार...यहाँ पर कोई बल या बुद्धि बेकार है।

नहीं तो संगीत के वह रुस्तमेहिंद और उन्हीं की बेटी उड़ाई जाय। सो भी उसके द्वारा, जो जिंदगी-भर उस्ताद के सामने बेटे-सा बाअदब रहा। इस राजा के लिये उस्ताद ने हिंदुस्थान के अच्छे-अच्छे नवाबों—यहाँ तक कि निजाम तक के न्योते को ना-मंजूर कर दिया था, और इसी ने उस्ताद को हर तरह से बेइज्जत किया।

रह-रहकर उस्ताद राजा मदनसिंह को बददुआ देना चाहते, और रह-रहकर राजा के पुराने एहसानात उस्ताद को उदार बना देते; मगर फ़ीरोजी...क्या राजा के लिये उस्ताद उस लड़की को भूल सकते हैं ?

नहीं। उसकी याद आते ही उस्ताद के मन में दंड देने की भावना ज़ोर पकड़ती। वह मारे जोश के घूँसा बाँध हथेली पर मारने लगते—दाँतों से दाँतों को दरते हुए!

"बहुत ग़लतियाँ ऐसी होती हैं..." उस्ताद मन-ही-मन जोड़ते—"जिनकी माफ़ी इंसान तो क्या, अल्लाह के पास भी नहीं! और पराई बहू-बेटी पर नज़र डालना ऐसी ही ग़लती है। फ़ीरोजी के अपमान का बदला केवल राजा मदनसिंह की जान से चुकाया जा सकता है।"

मगर उस तंग कोठरी में राजा की अपार शक्ति को याद कर उस्ताद घबरा उठे।

"या अल्लाह!" वह प्रार्थना करने लगे—"तेरा ही भरोसा है मालिक मेरे! कमजोरों का आख़ीरी आसरा, सहारा तू ही है।

"तू कमज़ोर मूसा को बचा सकता है, और ख़ुदी से पागल फ़िरऊन के लश्कर को ग़र्क़ेदरिया कर सकता है। तू मामूली भेड़ चरानेवाले को रोशनी दिखाकर पैगंबरी बख़्श सकता है। और, बड़े-बड़े बादशाहों को ठोकरें खिला सकता है।

"बंदा परवर! अब इस नाचीज़ को बेवफ़ा दुनिया से उठा लो! बेवफ़ा—बेशक!"

और, अब उस्ताद को मजलिस के बादवाली घटनाएँ याद आईं। याद आईं पाँच हज़ार की तश्तरियाँ। याद आया अपने माथे का क़र्ज़, और फिर याद आए दोस्त मियाँ सिद्दीक़, उजड़कर रोती हुई बेवा, पटरी पर ठंडी हवा से काँपनेवाले सैकड़ों मरभुक्खे, ख़ुदा की शिकायत करनेवाला ख़ुदा के दरवाज़े पर खड़ा फ़क़ीर!

रुपए पाकर दुनिया के दिलफ़रेब ऊपरी कठपुतलों ने कैसा-कैसा मुँह बनाकर, आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर उस्ताद का भला कहा था—दुआएँ दी थीं, और रुपए राजा की नाराज़गी से छिन जाने पर उन्हीं दोस्तों और अहसानमंदों ने किस हिक़ारत से उस्ताद को देखा—कैसे-कैसे ताने दिए, सो घटनाएँ भी उस्ताद की याददाश्त के दिल में काँटे-सी खटकती रहीं।

सबसे ज़्यादा बुरा लगा उन्हें उन दोस्तों का वह ताना, जिसमें उस्ताद को 'चोर' कहा गया था। चोर? नफ़रत से उस्ताद ने सोचा—फ़ैयाज़ हुनरमंद को नालायक़ हक़ीर चोर

समझा करते हैं। यह रंगीनख़ाँ की शैतानी और राजा की नाइंसाफ़ी थी, जो उन्होंने हुनर के जोर पर कमाए मेरे रुपए को ख़र्चने का हक़ मुझे न दिया।

मगर क्या ताज्जुब है! इस दुनिया में होम करते हाथ जलता है, और न करने से गुनाह माना जाता है!

फ़ितरत या बदमाशी को भी अगर थोड़ी देर के लिये हुनर मान लिया जाय, तो यह मानना ही पड़ेगा, रंगीनख़ाँ के अख़्तियारों को देखकर कि दुनिया में शैतानियत की झाड़ सोने के फल लाती है, और इंसानियत का पौधा कँटीला होता है।

उस्ताद सारी रात सोचते रहे और दूसरे सारे दिन, मगर इस पागलख़ाने से बचने या प्राण-प्यारी फ़ीरोज़ी से मिलने की कोई भी तरकीब उन्हें न सूझी।

आख़िर उस्ताद की उम्मीदों की तरह सूरज भी डूबने पर आया। दूर पर मुअज़्ज़िन की आवाज़ एक अजीब दिलकश सुर में सुनाई पड़ी--

"अल्लाहो अकबर!"

और, उस्ताद गुलाबख़ाँ मुअज़्ज़िन की आवाज़ सुनते ही आर्त की तरह, चारों ओर से हारे की तरह, थककर, आँखें बंद कर, घुटने टेककर अल्लाह पाक के क़दमों पर गिर पड़े—

"या अल्लाह! कोई तो रास्ता....!"

उस्ताद ने हारकर प्रार्थना की, वह जमीन पर दंडायमान हो गए।

"उस्ताद !" एक मीठी आवाज़ उनके कानों में गूँजी।

आँखें खोलते ही उस्ताद ने खानसामे के ड्रेस में अपने प्यारे शागिर्द रहीम को देखा।

"अरे रहीम !" उस्ताद ने शागिर्द को ख़ुदा का फ़रिश्ता माना। वह गद्गद हो उठे।

"बेटा रहीम ! अरे अल्लाह तुझे ग़ारत न करे ! तू यहाँ कैसे आ फटा—बद्‌माश !"

उस्ताद ने उछलकर रहीम को गले से लगा लिया।

"उस्ताद !" रहीम बोला—"लीजिए यह दूसरी पोशाक, इसमें साहब के खानसामे के सभी कपड़े हैं। इसी शक्ल में मैं आपको यहाँ से बचा ले चलूँगा।"

"मगर कैसे ?" हैरत से उस्ताद ने पूछा।

"ज़्यादा बातों की फ़ुर्सत नहीं हुजूर !" नेकबख्त रहीम ने नर्मी से समझाया उस्ताद को—"बंदे की बात मानिए। फ़ौरन् इन कपड़ों को पहनकर मेरे साथ आइए। बाक़ी बातें मैं बना लूँगा।"

उस्ताद ने बहुत दिनों बाद आज कुछ सीखा, और सीखा अपने प्यारे शागिर्द से ! क्या सीखा उस्ताद ने ?

रंग-रूप बदलकर किसी को धोखा देना।

और, धोखा देना सीखते ही गुलाबख़ाँ पागलख़ाने से मुक्त हो गए !

चिनगारी

जिस रात में महाराज मदनसिंह ने सुंदरी फ़ीरोज़ी पर पाशविक आक्रमण करना चाहा था, उसी रात में धर्मपुर-राजस्थित अँगरेज़ रेज़िडेंट के बँगले पर एक प्राइवेट पार्टी थी।

पार्टी में पागल-प्रोफ़ेसर, उसकी राजा-विमोहिनी पत्नी, सेक्रेटरी रंगीनखाँ और महाराज अजबगढ़ तक उपस्थित थे। रात आठ बजे से एक गोल मेज़ के सामने बैठे उक्त सभी सज्जन गिलास-पर-गिलास सुरा 'सिप्' करते रहे, और करते रहे बातें। यह क्रम एक बजे रात तक चलता रहा।

"क्या?" हरम की कहानी सुनकर रेज़िडेंट ने पूछा—"क्या सरकारी जाँच होने पर आपकी बात सच निकल सकेगी? सुनी सुनाई कहानियाँ तो आप नहीं कह रहे हैं?" "बिलकुल नहीं।" आस्ट्रियन मेम के बदले रंगीनखाँ बोला—आप अभी चाहें, तो चलकर जाँच कर सकते हैं। छावनी से अँगरेज़ी पल्टन की एक टुकड़ी मँगा लीजिए, जिसमें राजा के आदमियों को वश में किया जा सके।"

"अब आप ही बतलाइए जनाब!" राजा अजबगढ़ ने भी मुलम्मा चढ़ाया—"क्या ऐसे गुनहगार आदमी को एक क्षण भी ऐसे ज़िम्मेदार पद पर रहना चाहिए?"

"यही तो राजा साहब !" रेजिडेंट ने कहा—"मैं भी गंभीरता से सोच रहा हूँ।"

"सोच लीजिए।" राजा बोला—"मगर कृपया जल्द ही किसी निश्चय पर आइए, क्योंकि सवाल है सारी रियासत का, हजारों अबलाओं का, और पीड़ित प्रजा का। यह देखिए, इतने प्रमाण तो मेरे पास हैं मदनसिंह की बदमाशी के !"

रेजिडेंट के सामने कागजों का एक मोटा पुलिंदा राजा अजबगढ़ ने रख दिया—

"इन सभी कमजोर-गरीबों की बहू-बेटियाँ राजा मदनसिंह द्वारा उड़ाई-सताई गई हैं।"

"ओह !" रेजिडेंट पुलिंदा देखते ही चमक उठा—"इतने इल्जाम ! मालूम पड़ता है, महाराज मदनसिंह के खिलाफ़ सख्त कार्रवाई करनी पड़ेगी। बरसों से इस आदमी की कोड़ियों शिकायतें सुनाई पड़ रही हैं। आप ही ने मुझी से नहीं कहा, बल्कि बहुतों ने ये बातें वाइसराय तक पहुँचाई हैं। मेरे पास उनका आॅर्डर है कि अब जरा भी ढिलाई मदनसिंह के बारे में न की जाय। जरूरत हो तो...."

रेजिडेंट की बात काटते राजा अजबगढ़ ने कहा—"मदनसिंह को तख्त से उतार दिया जाय...."

"मगर ..." रेजिडेंट गंभीर नजर आया—"महाराज के कोई पुत्र नहीं। उनको उतारकर गद्दी पर बैठाया किसे जायगा ?"

"किसी को नहीं।" रंगीनखाँ बोला—"धर्मपुर-राज्य को ब्रिटिश खाते में जमा कर लेना चाहिए!"

"मगर नहीं।" रेज़िडेंट ने कहा—"इतनी जल्दी नहीं की जाती ऐसे मामलों में। कुछ ही दिन हुए कई रियासतें सरकारी कोप में जल चुकी हैं। एकाएक धर्मपुर-ऐसे राज्य में तब्दीली करने से भारतीय प्रजा में असंतोष फैल सकता है!"

"माफ़ कीजिएगा जनाब!" राजा अजबगढ़ बोले—"मदन-सिंह और मैं चचेरा भाई हूँ। ज़रूरत पड़ने पर नालायक़ भाई की भलाई के लिये मैं ख़ुद धर्मपुर का राजा बनने को तैयार हूँ। फिर चाहे इसके लिये मेरी जान ही क्यों न ख़तरे में पड़ जाय!"

"हाँ-हाँ!" रंगीनख़ाँ ने ताईद की—"धर्मपुर की गद्दी पर तो हुज़ूर का 'नेचरल क्लेम' है।"

इसी वक़्त ख़ानसामे ने रेज़िडेंट को सलाम किया—

"हुज़ूर! दो आदमी अभी मिलना चाहते हैं!"

"तो!" डाँटा रंगीनख़ाँ ने—"बोलो, रात में साहब किसी से नहीं मिलते।"

"मगर" रेज़िडेंट ने पूछा—"वे कैसे आदमी हैं? क्या चाहते हैं?"

"उनमें एक तो बूढ़ा मुसलमान है, और दूसरा जवान छोकरा। उनका कहना है कि अभी अगर साहब मदद न करेंगे, तो राजा धर्मपुर एक औरत को जान से मार डालेंगे।

हुजूर, मैंने उन्हें हजार टालने की कोशिश की, मगर वे टलते ही नहीं।" हैरानी से खानसामा बोला।

और, आदमी मदनसिंह के विरोधी हैं, यह जानते ही राजा अजबगढ़ ने उन्हें बुलाना चाहा—

"बुलाइए, देखा जाय, वह कौन-सी बला है!"

"बुलाइए जरूर!" रंगीनखाँ ने भी राय दी।

"और .." आस्ट्रियन मेम ने कहा—"केवल बुलाइए ही नहीं, उनकी बात सही लगे, तो इसी वक्त महल पर चढ़ाई कर उस औरत की जान बचाइए!"

"बुलाओ दोनों को।" रेजिडेंट ने खानसामा को ऑर्डर दिया। और, क्षण-भर बाद जो दो आदमी अंदर आते दिखाई पड़े, उन्हें पहचानते ही रंगीनखाँ कुर्सी से उलट गिरा। आस्ट्रियन पागल-प्रोफ़ेसर चमककर खड़ा हो गया—"यू.... आर्टिस्ट तुम पागलखाने से कैसे...."

"निकालो! मारो!" अपने अफ़सरों को भूल रंगीनखाँ चिल्लाने लगा—"यह राज्य का बाग़ी है। पागल है। इसको यहाँ तक कौन ले आया?"

रेजिडेंट या राजा अजबगढ़ एकबएक समझ ही न सके कि आस्ट्रियन प्रोफ़ेसर और रंगीनखाँ आगंतुकों को देखकर क्यों चमके।

"क्या बात है?" रेजिडेंट ने आस्ट्रियन से पूछा—"क्या आप लोग इन दोनों को पहचानते हैं?"

"बेशक !" प्रोफ़ेसर से पहले रंगीनखाँ बोला--"ये भारी बदमाश हैं।"

"नो !" आस्ट्रियन ने कहा--"यह बूढ़ा बहुत बड़ा 'आर्टिस्ट' है। यह ऐसा जबरदस्त गवैया है कि इसने सारे पागलों को एक गाने से चंगा कर दिया।"

"आप इसी के बारे में अभी कह रहे थे ?" रेजिडेंट ने दरियाफ्त किया।

"जी हाँ।" प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया--"इसी हुनरमंद की जान रंगीनखाँ राजा के लिये लेना चाहते हैं। मैं कहता हूँ, इसकी जान लेना मेरी राय से संसार के विरुद्ध बग़ावत है। ऐसा उस्ताद सारी दुनिया में नहीं....."

"मगर हुजूर !" रेजिडेंट को हाथ जोड़कर गुलाबखाँ उस्ताद ने कहा--"मैं मर जाऊँगा ! मुझे पूरा पता है--मेरी लड़की पर आज रात में जुल्म होता होगा या होगा। आज ज़रूर वह अपनी अस्मत बचाने के लिये जान देगी। और, अभी हुजूर चाहें, तो उसे बचाकर मुझे जिला सकते हैं। नहीं तो बिना फ़ीरोज़ी के मैं मर जाऊँगा। वह मेरी जान है ! ख़ुदा की बेटी है !"

धुआँ

"हे परमेश्वर !" बार-बार ईश्वर का नाम लेते हुए महाराज मदनसिंह सोचने लगे—"क्या यह संभव है ?"

'क्या मैंने अपनी ही आत्मजा से बलात्कार की चेष्टा अभी की थी ? मैंने ? कुलीन क्षत्रिय ने ?"

भय से आँखें बंद कर महाराज ने एक बार फ़ीरोज़ी का ध्यान किया। अ....ह ! उन्हें रोमांच हो आया। उसका चौड़ा माथा, व[illegible] ख़ास नाक, आसमानी आँखें, सभी महाराज के 'अपने-से' थे।

"मगर नहीं, मगर नहीं...!" मदनसिंह के मन ने घोर विरोध किया उपर्युक्त मत का—"यह कोई जाल है। फ़ीरोज़ी मुसलमान की लड़की वह...वह....मगर, उसकी आँखें क्यों मिलती हैं मुझसे ? क्यों ? अ . ह ! मैं नशे में हूँ। अस्वाभाविक रीति से उत्तेजित हूँ। मुझ-सी आँखें उसकी हो ही नहीं सकतीं। देख लूँ—हाँ "

आइने के सामने जा महाराज अपनी आँखें फ़ीरोज़ी से मिलाने लगे, मगर पहले उनकी नज़र गई सारे मुख पर।

"अ....ह !" सोचा उन्होंने—"मुझे हो क्या गया है ! आज मैं अपने ही को नहीं पहचान सकता। मेरा चेहरा ऐसा

भयानक, ऐसा निस्तेज, भूत या मुर्दे-सा तो कभी नहीं था। आज यह हो क्या गया है? क्या —मेरी लड़की? कौन बोल रहा है—मेरे अंतर के किस कोने से आवाज़ आ रही है? कौन बार-बार पुत्रीगामी कहकर मेरा अपमान कर रहा है? अरे! अभी मैं मरा नहीं, जिंदा हूँ। साधारण प्राणी नहीं, भारत की एक बहुत बड़ी रियासत का अधिकारी हूँ! अपमान करनेवाले को मैं पागलखाने भेज सकता हूँ—जेलखाने—फाँसी-घर!"

अब महाराज की नज़र अपनी आँखों पर गई।

"ओह!" वह काँप उठे—"वैसी ही तो.... मेरी आँखें नशे से ज़रा लाल हैं, मगर हैं उसी की-सी। हे परमेश्वर!"

अब महाराज का मन तर्क करने लगा कि क्या यह सब तूफ़ान ज़्यादा पी जाने की वजह से है? बेशक! बेशक! अधिक नशे के कारण ही व्यर्थ की कल्पनाएँ दिमाग़ में चक्कर काट रही हैं। नहीं तो कब की बात है, उस साधु-पुत्री की! अट्ठारहों बरस बीते होंगे। तब से अब तक हज़ारों युवतियाँ वैसी आईं, और रो-गाकर चली गईं। यह तावीज़वाली बात नशे की करामात है।

महाराज अपने पाँव के पास देखने लगे। वहीं, जहाँ थोड़ी देर पहले सँपोले की तरह उस तावीज़ के टुकड़े को फेंक दिया था। और, अब तक वह वहीं था पीले काग़ज़ का क्षुद्र टुकड़ा!

झपटकर राजा मदनसिंह ने उसको पुनः उठा लिया। फिर रोशनी में आँखें फाड़-फाड़कर उसे पढ़ने लगे—

"धर्मपुर के युवराज मदनसिंह की पाप-पुत्री……"

"आह! आह!" इस बार पूरी निराशा से महाराज फर्श पर गिर पड़े! उन्हें चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार नजर आने लगा।

और, अब मानसिक आंदोलन ऐसा भयानक होने लगा, जिसके आगे शराब का नशा एक पल भी न टिक सका। जैसे गोहत्या लगने से ब्राह्मण श्री-हत नजर आए, वैसे ही महाराज मदनसिंह फीरोजी-कांड से निस्तेज हो उठे!

थोड़ी ही देर में उनमें भयानक परिवर्तन हो गया। सारी जिंदगी विलास में बितानेवाला अपने से घृणा करने लगा। अपनी जान की खुशी के लिये हजारों जानों का गाहक बननेवाले के प्राण आज भार-से मालूम पड़ने लगे।

"हे परमेश्वर!" पुनः-पुनः एक ही आवाज महाराज के मुँह से निकलने लगी। क्या करें, इसी विचार से उन्होंने अगल-बगल, ऊपर-नीचे देखा। और, ऊपर नजर जाते ही एक चित्र पर निगाह गई।

चित्र था सत्यव्रती, धर्मात्मा राजेंद्र हरिश्चंद्र का। अपनी बात के लिये राज्य छोड़, चांडाल की सेवा में वह श्मशान में अपनी स्त्री से अपने ही लड़के के संस्कार के लिये 'कर' माँग रहे थे।

"आह !" चित्र देखते ही जैसे बिजली मार गई मदनसिंह को—"ऐसे पूर्वज थे मेरे—सूर्यवंशी, धर्मव्रती—और मैं ? अभागा, कायर, दास, नीच ! धिक्कार है ऐसी जिंदगी पर !"

किसी शस्त्र की तलाश में महाराज ने पुनः चारों ओर देखा, और इस बार देखा दूसरी दीवार पर दूसरा चित्र—राजा रामचंद्र देव का। माता जानकी और तपस्वी भाई लक्ष्मण के साथ मुनि-वेश धरे केवट से भगवान् नौका लाने का आग्रह कर रहे थे, और केवट डरी नज़र से लक्ष्मण की ओर देखता बिना चरण धोए भगवान् को नाव पर बैठाने से इनकार कर रहा था। पूरी भक्ति से।

"भगवान् रामचंद्र भी क्षत्रिय थे—सूर्यवंशी।" मदनसिंह सोचने लगे—"और मैं भी वही हूँ, मगर कितना अंतर ! पानी से ही कमल और जोंक, दोनो होते हैं। भगवान् रामचंद्र कमल थे, मैं जोंक हूँ। भगवान् ने देश, धर्म और कुल की मर्यादा स्थिर रखने के लिये सब कुछ किया, और मैंने उसी मर्यादा, प्रतिष्ठा, उसी इज्जत में कालिख पोतने में कुछ भी उठा न रक्खा ! आह ! कुलकलंकी !"

अब महाराज अर्ध-पागलवत् आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर दीवारों पर सूर्य-कुल के महान् क्षत्रियों के चित्र देखने लगे।

पौराणिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक के क्षत्रिय-महापुरुषों के चित्र उस कमरे में टँगे थे। महाराज को ऐसा

मालूम पड़ने लगा, मानो एक-एक चित्र उनकी तरफ़ नफ़रत से निहारकर अभिशाप दे रहा था।

यह धनुर्धारी अर्जुन का चित्र—मानो एक ही तीर से कुल-कलंकी को मार डालने की धमकी दे रहा था।

यह युधिष्ठिर का चित्र, मानो धर्मराज के आसन से मदन-सिंह के लिये रौरव नरक की व्यवस्था दे रहा था।

यह सिसौदिया-कुल के प्रतिष्ठापक का चित्र, जिसने धोखे से शराब पी लेने के कारण प्रायश्चित्तरूपेण गर्म सीसा पी लिया!

यह वीर हम्मीर! जिनके यशों का डंका आज भी इतिहासों में बज रहा है।

यह साँगा, जिनके पीठ छोड़ अंग-अंग पर शस्त्रों के घाव हैं। अंग-हीन होने पर भी जो दुश्मनों को लोहे के चने चबवाते रहे!

यह राणा प्रताप—प्रताप, जो भारत के अंतिम क्षत्रिय थे! जिन्होंने धर्म, जाति और देश के लिये तरह तरह के कष्टों को गले से लगाया था।

"और, मैं····?" महाराज का कलेजा मारे ग्लानि के मुँह तक आने लगा—"और मैं·· पुत्रीगामी! सूर्यवंशी! छिः! धिक्कार है, हजार, लाख मुझ नीच पर!"

झपटकर महाराज ने राजसी मेज़ का छोटा-सा दराज खोला। उसमें से एक छोटी-सी चीज़ निकाली—

जर्मनी का बना, कोई ढाई इंच लंबा और डेढ़ इंच चौड़ा एक पिस्तौल!

आइने के सामने खड़े हो महाराज ने पिस्तौल को पहले हृदय पर साधना चाहा—फिर कानों के सामने—फिर बीच माथे पर—फिर महाराज कुछ सोचने लगे।

तुरंत टेबुल के पास जा अपने लेटर पेपर पर उन्होंने लिखा—

"फ़ीरोजा मेरी लड़की है। मेरे बाद धर्मपुर-राज्य की रानी वही बने, यह मेरी आखिरी इच्छा है। मैं अपनी खुशी के लिये जीता था, और अपनी ही खुशी से अब मर रहा हूँ—

मदनसिंह (महाराज धर्मपुर)"

इसके बाद जर्मनी के विज्ञान द्वारा भारत के एक अज्ञानी, बेचारे राजा की कहानी समाप्त हो गई!

धड़-धड़-धड़! तीन फ़ायर कर महाराज धड़ाम से फ़र्श पर गिरकर तड़पने लगे!

इसी वक्त कई गोरे सिपाहियों के साथ रेजिडेंट और गुलाबखाँ तथा रंगीनखाँ कमरे में दाखिल हुए।

और, इनके देखते-ही-देखते महाराज मदनसिंह के पीड़ित प्राण-पखेरू उड़ गए!

आग

सबसे पहले उस्ताद गुलाबखाँ झपटे राजा के मुर्दे की तरफ़—"हुज़ूर ! सरकार ..."

मगर हुज़ूर या सरकार अब संसार पार थे ! उस्ताद ने अदब से, गंभीरतम शांत रूप बनाकर राजा के शव को पृथ्वी से ऊपर उठाया—

"अदब !" उन्होंने आवाज़ दी—"महाराज बहादुर श्री-मदनसिंह साहब दामे एक़बालहू !"

"दुःख की बात है ...." सचमुच दुखी रेज़िडेंट बोला।

दर्जनों अँगरेज़ सिपाही क़तार बनाकर राजा के शव को सलाम करने के भाव में बंदूक़ें सीधी कर खड़े हो गए।

रेज़िडेंट और रंगीनखाँ ने टोपियाँ उतार लीं—नीचे सिर झुकाकर स्तब्ध रह गए। और, उस्ताद—न पूछिए ! मूर्तिवत्, पागल की तरह गंभीर या भयानक नज़र आए।

"यह आदमी ..." तड़पते दिल से उस्ताद ने कहा—"बिल-कुल बेक़ुसूर था। जनाब ! मैं कहता हूँ, यह आदमी हीरा था ... 'को न कुसंगति पाइ नसाई।' नहीं तो राजा मदनसिंह निहायत साफ़-दिल, सखी, हुनर को, कला को समझनेवाले—और रब की नज़रों में—रईस थे।"

"मगर वजह !" देर तक रेज़िडेंट के सामने रंगीनखाँ ने गुलाबखाँ को बोलने न दिया—"वजह क्या है महाराज की .खुदकुशी की ?"

रेज़िडेंट और सेक्रेटरी कमरे में कारण ढूँढ़ने लगे। उनकी नज़र अँगरेज़ी में लिखे महाराज के पत्र पर गई, जिसे पढ़ते ही—

"फ़ीरोज़ी कौन है ?" रंगीनखाँ से रेज़िडेंट ने पूछा।

"मैं नहीं जानता जनाब !" चट रंगीनखाँ फ़ीरोज़ी के बारे में अज्ञानता दिखाने लगा—"मगर नाम किसी मुसलमान औरत या लड़की का मालूम पड़ता है।"

"अजी मियाँ सेक्रेटरी !" घृणा से रंगीनखाँ की तरफ़ देखकर उस्ताद ने रेज़िडेंट को बतलाया—"फ़ीरोज़ी मुझ नाचीज़ की बेटी है। मैंने उसे जंगल में नन्हीं-सी फेंकी हुई पाया था। हुज़ूर, वह मेरी लड़की है। और, यह रंगीनखाँ अव्वल दर्जे का हरामज़ादा है। राजा को अंधड़ की तरह अनीति पर दौड़ानेवाला यही अभागा प्राइवेट सेक्रेटरी है। जिसका नाम तो मुसलमान है, मगर मज़हब बदमाशी।"

"फ़ीरोज़ी कौन है ?" फ़िज़ूल बकने के लिये डाँटा रेज़िडेंट ने उस्ताद को, और असल मसले पर आने का इशारा किया।

"फ़ीरोज़ी मेरी बेटी है। पाक बेटी—.खुदा की दी हुई।

उसी को इस नापाक पशु रंगीनखाँ ने पकड़वा मँगाया है राजा के लिये...समझा हुजूर, क्या लिखा है उस पुर्जे में ? क्या हुआ फ़ीरोजी का ?"

"अब्बा ! मेरे अच्छे अब्बा !" की आवाज़ नेपथ्य से आई, और फ़ीरोजी का स्वर पहचानते ही उस्ताद के रोंगटे वात्सल्य-प्रेम से खड़े हो गए। उनकी आँखों में आँसू भर आए। तब तक तो पीछे से तीर-सी सनकती आकर फ़ीरोजी गुलाबख़ाँ से लिपट गई, मगर उसी वक़्त उसकी नज़र पलँग पर पड़े राजा मदनसिंह के शव पर पड़ी। महाराज की दीन आँखें अधखुली थीं, मानो किसी से क्षमा माँग रही थीं।

"हैं ! महाराज को क्या हो गया ? अब्बा !"

"महाराज।" भरे गले से उस्ताद ने कहा—"महाराज ने न-जाने क्यों आत्महत्या कर ली।"

"ऐ मेरे अल्लाह !" ख़ुदा के इंसाफ़ पर तौबा कर कान छूती फ़ीरोजी बोली—"परवरदिगार किसी को छोड़ता नहीं—कोई भी गुनहगार बिना सज़ा...."

"बेटी...." फ़ीरोजी को मरे आदमी की मलामत न करने का इशारा करते हुए उस्ताद बोले—"माफ़ करो !"

"माफ़ करे अल्लाह ऐसे शैतान को अब्बाजी ! मैं तो इंसान हूँ। यह आदमी...."

"फ़ीरोजी कौन है ?" रहस्य का सूत्र शीघ्र न पाने से

उत्तेजित रेजिडेंट बोला—"पहले हमको यह बतलाओ कि फ़ीरोज़ी कौन है?"

"मैं हूँ फ़ीरोज़ी···" तेज़ी से फ़ीरोज़ी ने कहा—"और यह मेरे अब्बाजी हैं। अच्छे अब्बाजी!"

फ़ीरोज़ी पुनः उस्ताद से लिपट गई। बच्चे की तरह!

'महाराज मदनसिंहजी की अंतिम इच्छा है" गंभीरता से रेजिडेंट ने कहा—"फ़ीरोज़ी उनके बाद धर्मपुर की महारानी बनाई जाय। फ़ीरोज़ी को राजा मदनसिंह ने अपनी बेटी लिखा है।'

"हिश्...." फ़ीरोज़ी ने अविश्वास प्रकट किया—"मैं ऐसे कमज़ात की बेटी हो ही नहीं सकती। मैं तो अपने अब्बाजी की बेटी हूँ—फ़ीरोज़ी!"

"अँगरेज़ी सरकार पर··" रेजिडेंट बोला—'महाराज के आख़िरी पत्र का भारी असर पड़ेगा, और बहुत मुमकिन है कि फ़ीरोज़ी ही धर्मपुर की महारानी बने!"

'अच्छा!" तेज़ी से तमककर फ़ीरोज़ी बोली—"किस पागल-खाने में तुम बैठे हो, भागो, चलो, नहीं तो ये साफ़ कपड़े पहननेवाले चमकीले बदमाश फिर हम बाप-बेटी को जुदा कर देंगे। भागो—अब्बाजी! भागो।"

और, रेजिडेंट, रंगीनख़ाँ सेक्रेटरी और दर्जनों गोरे सिपाही देखते ही रहे—उस्ताद गुलाबख़ाँ को बरबस फ़ीरोज़ी कमरे से बाहर, महल से बाहर, राजा के कोट के बाहर सनी—

दूर—सड़क पर घसीट ले गई, और उस्ताद पतंग के पुछल्ले से हवा में उड़ते फ़ीरोज़ी के साथ पागलों-से दौड़ते रहे। ओह! आज उस्ताद गुलाबख़ाँ बूढ़े नहीं, सोलह बरस के मनस्वी युवक-से लहराने लगे। आज उन्हें जीवन ऐसा मधुर, ऐसा अमोल मालूम पड़ा, जिसके लिये युगों तक मरते रहने की भी उन्हें परवा नहीं। फ़ीरोज़ी को पाकर उस्ताद में इतना बल आ गया, जितना परों को पाने से परकटे कबूतर में।

"अब्बाजी!" धर्मपुर से कोसों दूर भाग आने पर एक वटवृक्ष की उभरी जड़ों पर बैठकर फ़ीरोज़ी बोली—"अब्बाजी, अब हम दूर भाग आए। अब वे पाजी हमें न जुदा कर सकेंगे। आह! अच्छे अब्बा! तुम्हारा मुँह सूख क्यों गया? तुम्हारी उँगलियों में रहनेवाली मिज़राब कहाँ गई? आँखों में सुर्मा नहीं—पोशाक न तो नवाबी रही, न भाफ़। माजरा क्या है अब्बाजी?"

"सब शुक्र है अल्लाह का बेटी!" गंभीर उस्ताद बोले—"वह न-जाने किस इरादे से न-जाने क्या पैदा करना है। कहाँ तू—कहाँ महाराज मदन—कहाँ मैं, और क़िस्सा कैसा पैदा हो गया, तू महाराज की बेटी! या अल्लाह!"

"मैं आपकी बेटी हूँ अब्बा! राजा की बेटी बार बार कहकर मेरा दिल न दुखाओ!"

"सच है, तू मेरी बेटी—मेरी आँखों की रोशनी—मेरी जान से भी ज्यादा प्यारी फ़ीरोज़ी है—मगर बेटी! राजा

बेचारा बेमौत मरा, तुझे बेटी जान लेने पर उस रईस पर जो बीती होगी, दिल के जिस कशमकश में उसने पिस्तौल से खुद-कुशी की होगी—ओह दोज़ख ! बेटी ! राजा मदनसिंह दोज़ख भोगकर मरा... अभागा ! बेटी !"

"अब्बाजी !"

"रंज न हो, सच कहता हूँ, अब दुनिया से अपना दिल उखड़ गया है। जी करता है, तेरे क़दमों पर सिर पटक दूँ, और खामोश हो जाऊँ हमेशा के लिये।"

"तो अब्बाजी !"

"मैं अब मरूँगा—मैं साफ़ देख रहा हूँ बेटी ! मेरा वक्त पूरा हो गया।"

"क्या ?"

"मैं तुझे किसी फ़क़ीर को सौंपकर ...अल्लाह का नाम लेते हुए..."

"क्या अब्बाजी ! मुझे छोड़ देंगे ? तब तुमने अपनी फ़ीरोज़ी को नहीं समझा !"

"क्या ?"

"मैं भी मानती हूँ अब्बा कि शरीफ़ आदमियों के रहने लायक यह दुनिया हरगिज़ नहीं !"

"ओ हो ! बड़ी आक़ला बन गई !"

"अब्बा ! जो जितनी ही बड़ी मुसीबत को पहाड़-सा झेलता है, उसकी अक़्ल उतनी ही बड़ी हो जाती है। मुझे नफ़रत

हो गई है ज़िंदगी से। मैं न तो किसी राजा की औरत बनती-बनती बेटी बनूँगी, और न किसी शाह-फ़क़ीर की बीवी। मैं तोआपकी प्यारी फ़ीरोज़ी, बरकतोंवाली फ़ीरोज़ी हूँ, और वहीं रहूँगी। मैं आपसे पहले ही मरना चाहती हूँ!"

"चुप पगली!"

"बख़ुदा! मेरे अच्छे अब्बा, मैं जीना नहीं चाहती।"

"अच्छा!" अब ख़ुशी से खिलकर उस्ताद ने कहा—"अच्छा! तो ...ओह! अल्लाह! तेरे साथ मरने का लुत्फ़ .. बेटी!"

"अब्बाजी!"

"तू मर सकती है?"

"ख़ुशी से चोले को पुरानी सारी-सी चीरकर फेंक सकती हूँ, आपकी बेटी'''हठीले बाप की बेटी हूँ अब्बाजी!"

"तो आ, मैं अपने हाथ से तेरा ख़ून करूँगा। पहले तुझे ख़त्म कर फिर मैं भी भागता आऊँगा।"

"कहाँ अब्बाजी?"

"वहीं—दुनिया के उस पार। हम फिर मिलेंगे—चाहे किसी शक्ल में—मिलेंगे ज़रूर, क्योंकि हम मिले हुए जीते रहे, और मिले ही मरेंगे। हमारा मेल मामूली नहीं, अल्लाह की ख़ास मिहरबानी है। अच्छा—भला!"

उस्ताद कुछ सोचने लगे—कुछ गुनगुनाने। भयानक स्वर से! इस सोचने या गुनगुनाने से उस्ताद का मुँह अंगारे-सा लाल हो उठा।

"बेटी ! होशियार... अब मैं गाऊंगा !"

"क्या....अब्बाजी !"

"मैं आज वह राग गाऊँगा, जिसे गाने को मना किया है उस्तादों ने—बुजुर्गों ने।"

"क्या ?"

"दीपक-राग बेटी ! इस राग की औरतों को तो लोग गाते हैं, जैसे—रागिनी प्रदीपिका, धनाश्री, जयतश्री, भीमपलासी वग़ैरा, मगर मूल दीपक राग उस्ताद तानसेन के बाद फिर नहीं गाया गया !"

"और आप उसी को गाएँगे ?"

"मैं गाऊँगा—होशियार ! और, मेरी कला से दुनिया में गर्मी फैलेगी, धुआँ उठेगा आग लगेगी—चारों ओर उजाला फैल जायगा। बेटी !"

"अब्बाजी !"

"एक बार मेरे सीने से लग - मैं तुझे नन्हीं फ़ीरोज़ी कहकर एक बार—मगर नहीं—दूर ! होशियार ! मैं.. मैं अपनी कला से प्रलय पैदा करता हूँ !"

सा ग म ध सा नि ध म ग सा

ग ग म ध सा ग सा नि ध म ग सा....

उस्ताद दीपक राग के स्वर धीरे-धीरे गले में गुँजाने लगे। फिर तेज पड़े—राग के कैंड़े पर आने पर कुछ परिश्रम लगता मालूम पड़ा। उस्ताद ने जोर-जोर से तानें लेना और गरज-गरज-

कर स्वर गाना आरंभ किया—उस्ताद गुलाबख़ाँ निर्विकल्प समाधिस्थ योगी की तरह तल्लीन होकर दीपक-राग गाने लगे।

और, उस वटवृक्ष से थोड़ी दूर पर आम सड़क थी। इसी वक्त चर्रख़चूँ करती एक गाड़ी सड़क पर रुकी। शायद ताँगा।

रात अँधेरी थी। ताँगे की लालटेन बुझ गई थी। उसी को रोशन करने के विचार से ताँगा रोककर ताँगेवाला सलाई की पेटी ढूँढ़ने लगा, मगर जेब, गद्दी के नीचे, इधर-उधर, चारों ओर तलाशने पर भी सलाई न मिली।

ताँगेवाले को दूर से सुनाई देनेवाले गाने में बड़ा जोश, बड़ी कशिश मालूम पड़ी। उसने सोचा, गवैए के पास सलाई ज़रूर होगी। ज़रूर दरख़्त के नीचे अँधेरी रात में किसी रईस की टोली जुटी होगी। ताँगेवाला सलाई की तलाश में बढ़ा—दीपक-राग-रत उस्ताद की तरफ़।

अब तक उस्ताद को गाते हुए आधे से ज़्यादा घंटा हो गया था। वह पूरे प्रवाह में, प्रचंड अधिकार से दीपक-राग ललकार रहे थे। वह ऐसी-ऐसी तानें ले रहे थे, जैसे हाथी चिंघाड़े, शेर दहाड़े—बादल गर्जे!

एकाएक उस्ताद के आस-पास का वातावरण हो-हो कर जल उठा! चारों ओर आग लग गई। बरगद का एक-एक पत्ता दीप-बत्ती-सा निर्धूम जल उठा। सारा जंगली रास्ता उजाला-उजाला हो गया! और, उस्ताद गाते ही रहे, और आग बढ़ती ही रही।

ताँगेवाला उस उजाले का कोई अर्थ न समझ सका, सिवा इसके कि हो-न-हो, बरगद में भूतों का अड्डा हो। भूत ही एकाएक लपटें चारों ओर पैदा कर सकते हैं। बाप रे! तो क्या यह दिलकश गवैया कोई भूत है? जिन! बाप रे!

ताँगेवाला उलटे पाँव अपने ताँगे की ओर झपटा, मगर लो, ताँगे का चिराग़ अपने आप ही जल उठा!

अब ताँगेवाला एक क्षण भी उस स्थान पर न रुक सका। अपने को शैतानों से घिरा जान, मन-ही-मन कलमा पढ़ता, सिर पर पाँव रख ताँगेवाला भाग चला उधर—जिधर उसका सींग समाया, राह मिली! लेकिन बदनसीब भाग भी न सका। थोड़ी ही दूर जाकर बेहोश हो वह गिर पड़ा।

बस

तॉंगेवाला होश में आया मारे डर के पूरी नींद ले लेने के बाद—दूसरे दिन सबेरे, सूरज निकल आने पर।

वह सड़क पर धूल में पड़ा था, और उसका बुड्ढा घोड़ा टुटहे ताँगे के साथ उसके पाताने खड़ा था।

"ओह ! घोड़ा भी शैतान के डर से दूर भाग आया। शुक्र है !" ताँगेवाले ने सोचा—"जान भी बची और माल भी। मगर...."

पीछे घूमकर उसने बरगद की तरफ़ सभय देखा, और वह चिल्ला उठा—

"बाप रे ! गज़ब !"

उसने देखा, बीचोबीच से फटकर बरगद ज़मीन पर झुलसा, जला गिरा है। और ? और उसे दो मुर्दे से नज़र आए !

दिन होने के कारण, चारों ओर निर्भय उजेला होने से ताँगेवाला हिम्मती रहा। उसने नज़दीक जाकर घटना का मर्म जानना चाहा। वह गया बरगद के निकट। उफ़ !

ताँगेवाला उस्ताद गुलाबख़ाँ के मुर्दे को पहचान गया—हाँ, फ़ीरोज़ी को वह न पहचान सका। वह बहुत बुरी तरह जल गई थी। उस्ताद जले नहीं थे। हाँ, ऐसा मालूम पड़ता था,

मानो उन्हें आग या बिजली के चाबुकों से मारा गया है! सारी देह पर लंबे लंबे, लाल-लाल चिह्न थे!

उस्ताद की महिमा ताँगेवाला जानता था। जानता था कि उन-सा कलावंत इंडिया में दूसरा नहीं। वही उस्ताद गाते हुए मर गए, इस ख़याल से मुसलमान ताँगेवाला उस्ताद के कारण पीटे जानेवाली घटना भूल गया, और ऐसे गुणी के इस तरह मर जाने से दुखी हो उठा। उसकी आँखों में आँसू आ गए।

"ओह!" उसने सोचा—"जिस शख़्स ने जिंदगी में लाखों खाए और लुटाए, उसका न तो जनाज़ा उठा, और न मज़ार बनी! उसकी लाश पर आज कोई दो आँसू रोनेवाला भी नहीं, जो गा-गाकर लोगों की आँखों से दरिया बहा देता था!"

और, ताँगेवाले ने फ़ख़् माना इस बात में कि अल्लाह ने उसे उस्ताद की एक ख़िदमत का मौक़ा दिया। दोनों लाशों को सावधानी से उठाकर उसने अपने टुटहे ताँगे पर आहिस्ते से सुला दिया।

तड़के ही रसूलपुर से धर्मपुर या धर्मपुर से रसूलपुर जाने-आनेवालों ने रास्ते में एक टुटहा ताँगा देखा। लोगों ने देखा, ताँगे पर दो लाशें थीं। ताँगेवाला घोड़े को भगाना भूल ज़रा-ज़रा रो रहा था, और वह टट्टू—हंटर खाने के बाद उस्ताद गुलाबख़ाँ के हाथ से पाँच रुपए के केसरिया पेड़े खानेवाला मरियल टट्टू—आज रेस के घोड़े-सा सनका भागा जा रहा था।